ओंकार आदर्श-चरितमाला की छठी पुस्तक



"श्री गरमल-शारदा-सदन"
बीकानेर



सम्पादक
ओङ्कारनाथ वाजपेयी



महाराणा प्रतापसिंह

Onkar Press Allahabad

प्रताप चरितामृत

(मेवाड़ेश्वर, महाराणा प्रतापसिंह का चरित और मेवाड़ का संक्षिप्त परिचय)

वतन पर हम फ़िदा होंगे
हमें तो वतन प्यारा है ।
यह महबूब है अपना
हम इसके यह हमारा है ।

श्री जुबिली नागरी भंडार पुस्तकाल
बीकानेर

लेखक

पं० नन्दकुमारदेव शर्म्मा

भूतपूर्व सहायक—"बिहारबन्धु"—"आर्यमित्र"
"मारवाड़ी" (नागपुर) आदि,
भूतपूर्व संयुक्त सम्पादक—सद्धर्म प्रचारक
तथा
भूतपूर्व सहायक-मंत्री—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
आदि आदि ।

प्रकाशक

पं० ओंकारनाथ वाजपेयी

सन् १९१९

प्रथम बार २१००] [मूल्य ।)

उत्सर्गपत्र

प्रिय बन्धु

मालदा निवासी और कलकत्ता निवासी

बाबू नगेशचन्द्र अगरवाला

के

करकमलों

में

लेखक का

यह प्रेमोपहार

सादर समर्पित

है

नन्दकुमारदेव शर्म्मा

निवेदन

लो ! प्यारे पाठको ! आज आपकी सेवा में महाराणा प्रतापसिंह का चरित समर्पित है। यह आदर्श-चरितमाला की सातवीं संख्या, और उस मालामें मेरी यह पांचवीं भेट है। जिस तरह से आप लोगों ने "आदर्श-चरितमाला" में मेरी पूर्व पुस्तकें—स्वामी विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द, महात्मा गोखले और स्वामी रामतीर्थ को अपनाया है, वैसे ही मुझे आशा है कि यह मेरी लघु पुस्तक भी आपके पसन्द आवेगी।

सन् १९१३ में, जब मैं दिल्ली से "सद्धर्मप्रचारक" की सेवा परित्याग करके, अपनी जन्मभूमि मथुरा में आया था तब मेरे अनुरोध से, मथुरा की आर्यमित्र सभा ने अपने यहां संसार के कतिपय महापुरुषों की जीवनी पर कुछ व्याख्यान रखे थे उनमें से महाराणा प्रताप सिंह और छत्रपति शिवाजी की जीवनी पर मेरे व्याख्यान हुये थे, तब से कई मित्रों का उक्त दोनों व्याख्यानों को छपा देने का अनुरोध हो रहा था इधर ओंकार प्रेस के स्वामी और मेरे प्रिय मित्र, पण्डित ओंकारनाथ वाजपेयी का आग्रह—महाराणाप्रताप की जीवनी लिखने का हो रहा था, अतएव मैंने यह छोटी सी जीवनी लिख दी है, हिन्दी में कई जीवनी महाराणा प्रताप की नाटक उपन्यासों के रूप में हैं, दो एक ऐतिहासिक रीति पर भी जीवनी हैं। इस जीवनी तथा अन्य जीवनियों में क्या अन्तर है, इसको छान बीन करने वाले पाठकों को दूसरे चरित्रों से इस चरित्र को मिलाकर पढ़ना चाहिये तब उन्हें इस जीवन चरित तथा अन्य जीवन चरितों का कुछ भेद मालूम होगा।

यह जीवन, टाड साहब कृत राजस्थान के इतिहास के आधार पर लिखा गया है पर जिन ऐतिहासिक पण्डितों का टाड साहब से मत भेद है, उनकी सम्मति भी मैंने फुटनोट (पाद-टिप्पणियों) में दे दी है। यदि कुछ भूलचूक हुई हो, अथवा कोई नयी बात सूझे तो पाठक सूचित करने की कृपा करें। यथासम्भव, उस पर ध्यान दिया जायगा।

४२ शिवठाकुरस लेन
कलकत्ता
१८—१२—१५
मार्गशीर्ष शु० १२ स० १९७२

निवेदक
नन्दकुमारदेव शर्म्मा

प्रस्तावना

*पुराणमितिहासाश्च तथाख्यानानि यानि च
महात्मानां च चरितं श्रोतव्यं नित्यमेव च,
(महाभारत)

†"There is not a petty state in Raajsathan that has not had its Thermopyloe and scarcely a city that not produced its Leonidas"—*Tod's Rajasathan.*

एक सहृदय बङ्गाली लेखक ने क्या ही अच्छा कहा है कि राजपूताना भारतवर्ष का हृदय है। जैसे मनुष्य का प्रधान बल हृदय में रहता है और हृदय के बल से जैसे प्राकृत महत्त्व सूचित होता है वैसे ही भारतवर्ष की प्रधान शक्ति राजपूताने में है। एक समय राजपूताने की महाशक्ति से ही भारतवर्ष का गौरव सुप्रतिष्ठित हुआ था। इस समय भारतवर्ष की महाशक्ति राजपूताने में हो या न हो, परन्तु आज भी इस गई बीती दशा में, इस अधःपतन के समय में, मेवाड़ समस्त राजपूताने का नहीं नहीं समस्त भारतवर्ष का शिरोमणि है। आज भी चित्तौड़का किला राजपूताने की तथः भारतवर्ष की हिन्दुओं

---

* पुराण, इतिहास आख्यायिकायें तथा महात्माओं के चरित्रों को नित्य सुनना चाहियें।

† राजस्थान में ऐसी कोई छोटीसी भी रियासत नहीं है, जिसमें धर्मापुली की भांति युद्ध न हुआ हो और कोई ऐसी छोटी नगरी नहीं है, जिस में लियोनिडास की भांति वीर पुरुष ने जन्म न लियः हो। लेखक

की वर्त्तमान दशा पर डाह मार कर रोरहा है। कौन ऐसा हिन्दू सन्तान और सहृदय व्यक्ति है। जिसका कलेजा चित्तौड़ का दुर्ग देख कर न फटता हो। चाहे जैसे पत्थर के हृदय का मनुष्य क्यों न हों, पर चित्तौड़ के किले को देखकर उसको रुलाई आये बिना नहीं रहती है। यदि कोई मुझसे पूछे कि हिन्दुओं का सच्चा तीर्थ कौनसा है। तो मैं बिना किसी संकोच और बिना प्रतिवाद के भय के यही उत्तर दूंगा कि हिंदुओं का सच्चा तीर्थ चित्तौड़गढ़ और पञ्जाब की पवित्र भूमि चिलियानवाला है। इन दोनों स्थानों से बढ़कर भारतवर्ष में तो क्या संसार में भी और कोई स्थान है या नहीं इसमें संदेह है। इतिहास लेखकों ने ग्रीस के लियोनिडाज़ और मिलताइडिस की प्रशंसा के बड़े २ पुल बाँधे हैं पर सच पूछिये तो इस भारतमाता की गोद में अनेक लियोनिडाज़ और मिलताइडिस खेले हैं।

अरे प्राचीन सभ्यताभिमानी और तीर्थयात्रा के अनुरागी हिन्दुओ! एक बार आंखे खोलकर देखो तो सही। कि तुम्हारी प्राचीन सभ्यता की गवाही चित्तौड़गढ़ दे रहा है। उसकी एक २ दीवाल पर तुम्हारी प्राचीन सभ्यता के निशान बने हुए हैं। चित्तौड़गढ़ का एक २ कोना एक एक ईंट तुम्हारी प्राचीन सभ्यता का पता दे रही है। तीर्थयात्रा के प्रेमियो! एक बार चित्तौड़गढ़ की यात्रा करो तो सही उसकी दीवालों पर तुम्हें साक्षात् धर्म के दर्शन होंगे, जिस शान्ति की खोज करते करते, तुम बावले होरहे हो वह सच्ची शान्ति चित्तौड़गढ़ के भीतर पैर रखते ही प्राप्त होती है। क्या देखते नहीं हो कि कौनसा ऐसा देश है जहां की अबलाओं ने भी प्रबल शत्रुओं के

दांत खट्टे किये हैं जहां की स्त्रियों ने अग्नि में कूद कर अपने अपने धर्म की रक्षा करके आत्मिक बल का परिचय दिया है, जहां के सुकुमार कोमल बालकों ने भी अपने देश की रक्षा के निमित्त अपने प्राणों की आहुति देदी है। यदि संसार में ऐसा कोई पवित्र स्थान समझा जा सकता है तो वह पवित्र स्थान, भारतवर्ष का मुकुटमणि मेवाड़ है, जहां के निवासियों ने स्वतन्त्रता देवी की प्रसन्नता के लिये अपने खून की नदी बहाई थी। जहां की राजपूतसन्तान के जीवन का मूल मन्त्र भगवान श्रीकृष्णचन्द्र का यह वाक्य "हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्" रहा था क्या उसी पवित्र भूमि मेवाड़ और उसके नायक महाराणा प्रतापसिंह की कथा सुनना हिन्दू मात्र का पवित्र कर्त्तव्य नहीं है? आओ पाठक! आओ! आज उसी पवित्रभूमि और उसके नायक प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रतापसिंह की आलोचना करके, अपने हृदय को पवित्र करें।

मेवाड़ का इतिहास आदि से लेकर अन्त तक आत्मोत्सर्ग का इतिहास है। मेवाड़ के इतिहास में आत्मोत्सर्ग के जैसे ज्वलन्त और आदर्श दृष्टान्त मिलते हैं वैसे दुनिया के दूसरे देशों के इतिहास में मिलने असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हैं। मेवाड़ के आत्मोत्सर्ग का इतिहास ऐसा वैसा नहीं है वह मुर्दा दिलों को ज़िन्दा करने वाला इतिहास है। सूखी हड्डियों में खून उबालने वाला है, निराशा रूपी सागरमें गोते खाने वालों को चित्तौड़ का इतिहास आशा रूपी वल्ली है। डूबती हुई जातियों को चित्तौड़ का इतिहास तिनके का सहारा है। अधिक क्या कहें मृत्यु रूपी शय्या पर पड़े हुये राष्ट्रों

की सञ्जीवनी बूटी है पर दुःख है कि हमारी हिन्दी भाषा में मेवाड़ के कितने ही इतिहास बन जाने पर भी राष्ट्रीय दृष्टि से मेवाड़ के इतिहास की किसीने आलोचना नहीं की है। जिस देश के निवासियों का यह कथन था कि महात्माओं के चरित तथा इतिहासों का नित्य पाठ होना चाहिये उस देश में वर्तमान समय में इतिहास की आलोचना न होना अत्यन्त दुःखदायी है। भारतमाता के प्रत्येक आत्मगौरवप्रिय, स्वाभिमानी पुत्र को विशेषतः हिन्दुओं को मेवाड़ का इतिहास और उसके ध्रुवतारा महाराणा प्रतापसिंह का चरित नित्य प्रति पढ़ना और सुनना चाहिये।

प्रथम परिच्छेद

मेवाड़ का संक्षिप्त परिचय और पूर्ववृत्तान्त

जय जय जय चित्तौर दुर्ग
जय गढ़ सिर रत्न जगत विख्यात।
जिसने धर्म प्रेम के कारण
सहे शत्रुओं के आघात।
जिसके पत्थर कंकड तक पर
लिखा हिन्दुओं का इतिहास।
जिसको देख हमें हो सकता
अपनी दृढ़ता का आभास॥

थीवर

पाठक महाशय! हम बड़े असमञ्जसमें पड़े हुये हैं कि आप को मेवाड़ और उसकी राजधानी चित्तौड़ का क्या परिचय दें भला कभी कोई अङ्गुली के इशारे से भुवनभास्कर का परिचय दे सकता है? हमारी भी इस समय ऐसी ही दशा होरही है कवि लोग अपनी कल्पनाशक्ति के सहारे छोटी छोटी घटनाओं की बड़ी बड़ी महिमा वर्णन करते हैं। छोटी घटनाओं को बढ़ा चढ़ा कर वर्णन करने में पाठकों को आश्चर्य में डाल देते हैं पर हम न तो कवि हैं न हम में कल्पनाशक्ति है न हमारे मेवाड़ की ऐतिहासिक घटनाएं ऐसी छोटी हैं जिनको चढ़ा बढ़ा कर वर्णन किया जाय। न मेवाड़ की घटनाएं किसी

ऐसे पर्दे के भीतर छुपी हुई है जिनको ढूढ़ने खोजने की ज़रूरत हो। मेवाड़ का गौरव किसी पेचीले और चक्करदार तिलस्मी गढ़े में नहीं दबा हुआ है। मेवाड़ का अतुलनीय गौरव विश्वविदित है। हमारी टूटी फूटी कलम में ताक़त नहीं है कि हम उस विश्वविदित गौरव का परिचय पाठकों को दे सकें इसलिये हम भारतवर्ष के मुकुटमणि मेवाड़ और उसके वीर नायक महाराणा प्रतापसिंह को नमस्कार करते हैं। भारतवर्ष के अतुलनीय देव और हृदयेश्वर प्रताप! हमारी लेखनी में आपके गुणगान करने की तनिक भी शक्ति नहीं है। प्रताप! आपके अनन्त प्रताप की महिमा अंकित करने के लिये सैकड़ों क्या हजारों लाखों कवि लेखक और चित्रकारों की भी ताक़त नहीं है तब मुझसे दीन हीन लेखक की क्या सामर्थ्य है।

जिस समय भारतवर्ष में अशान्ति की ज्वालाएं उठ रहीं थीं, जिस समय धर्म-भूमि कर्म-भूमि भारतवर्ष में धर्म को ठुकराया जा रहा था आत्मगौरव और स्वजातीय का अपमान किया जारहा था उस समय राजपूतों ने विशेषतः मेवाड़ के क्षत्रिय-वीरों ने स्वधर्म स्वदेश स्वजातीय रूपी त्रिमूर्ति की उपासना की थी। मेवाड़ की स्वाधीनता के लिये अपने धर्म की रक्षा के लिये अपनी जाति के गौरव को अक्षुण्ण रखने के लिये मेवाड़ के क्षत्रिय वीरों ने सब कुछ विसर्जन कर दिया था। उसी मेवाड़ के क्षत्रिय वीर सूर्यवंशी हैं रघुकुल शिरोमणि भगवान रामचन्द्र जी के पुत्र लव के वंशधर हैं। कविकुलगुरु वाल्मीकि जी अपने अद्भुत ऐतिहासिक महाकाव्य रामायण में लिखते हैं कि रामचन्द्र जीने अपने अन्तिम काल

में लव को उत्तर कौशल और कुश को दक्षिण कौशल दिया था। उत्तर कौशल राजधानी श्रावस्ती थी। पुरातत्व के वर्तमान पण्डितों का कहना है कि श्रावस्ती नगरी गोंडा ज़िले में है। लव के वंशमें श्रावस्ती का शासन कितनी पीढ़ियों तक रहा था इसका कुछ पता नहीं लगता। कर्नल टाड के मत के अनुसार मेवाड़ के वर्त्तमान राजवंश के पूर्वज कनकसेन ने ही पहले पहल जन्मभूमि को त्याग किया था उनके वंशधरों में किसी किसी ने सौराष्ट्र और वल्लभीपुर में राज्य स्थापित किया था जिस समय शिलादित्य नामक राजा वल्लभीपुर में राज्य करते थे उसी समय हुनगणों ने वल्लभीपुर नगरी पर आक्रमण किया और उसको ध्वंस कर डाला हुनगणों के युद्ध में राजा वल्लभीपुर मारे गये उनकी रानी * पुष्पवती गर्भवती थी उसने इस भयानक संकट के समय एक गुहा में शरण ली थी वहीं उसके एक पुत्र हुआ। गुहा में जन्म लेने के कारण उसका नाम गोह पड़ा। मेवाड़ के राजपूत गण गोह के वंशमें होने के कारण† गोहिलट या गिहेलाट कहलाये। बहुत दिन पीछे उक्त गोहवंशीय नागादित्य के एक

* किसी इतिहास लेखक ने इस रानी का नाम कमलावती और उसके पुत्र का नाम केशवादित्य लिखा है। (लेखक)

† किसी किसी इतिहास लेखक का मत है कि बापा के पुत्र गुहिला से गुहिलौत कहलाये। राहपजी के समय तक तो बाप्पा रावल की सन्तान गुहिलौत कहलाई परन्तु राहपजी के पीछे उनकी सन्तान सीसोदिया कहलाई जाने लगी। सीसोदिया नाम पड़ने का कारण राहपजी का सीसोदा गांव में रहना कहा जाता है, किन्तु किसी किसी का यह भी कथन है कि राहपजी ने भूल से मदिरा पी ली थी, जिसके प्रायश्चित में राहपजी पिघला हुआ शीशा पीकर परलोक सिधारे और इसलिये उनकी सन्तान सीसोदिया प्रसिद्ध हुई।

पुत्र हुआ उसका नाम* बाप्पाराव पड़ा। बाप्पा बड़े प्रतापी थे। उन्होंने नकि अपना खोया हुआ राज्य ही प्राप्त किया बल्कि अतुलनीय पराक्रम से बड़े बड़े वीरों के दांत खट्टे कर दिये थे। विजय में ही लोकप्रियता निवास करती है जो लोग अपने बाहुबल से यशःसौरभ के शिखर पर चढ़ना चाहते हैं, विजया देवी उनको वरमाल पहनाये बिना नहीं रहती है। अतएव शनैः शनैः विजया देवी वीर वर बाप्पा से भी प्रसन्न हुई अपने अनन्त पराक्रम के बलसे बाप्पा ने चित्तौड़ पर अधिकार प्राप्त कर लिया बाप्पा केवल चित्तौड़ परही अपनी ध्वजा पताका फहरा कर ही शान्त नहीं हुए थे किंतु उन्होंने इस्पहान कन्दहार कश्मीर इराक ईरान तूरान † आदि पश्चिम देशों के बादशाहों को भी परास्त किया था।

बाप्पा की अवस्था चित्तौड़ के राजसिंहासन पर विराजते समय केवल १४ या १५ वर्ष की थी। सन् ७२८ ई० में उन्होंने चित्तौड़ का राजकार्य ग्रहण किया था और ईरान

*केशवादित्य बड़े प्रतापी थे, ईडर के भील राजाने उनको अपना उत्तराधिकारी बनाया, ईडर तथा उसके आस पास के स्थानों में केशवादित्य के वंशधर नागादित्य तक राज करते रहे। नागादित्य की मृत्यु के समय बाप्पा की अवस्था केवल तीन वर्ष की थी, जिस लक्ष्मणावती ने केशवादित्य की रक्षा की थी, उसकी वंशधरोंने बाप्पाकी रक्षाकी थी। बाप्पा परम प्रतापी था, उसका नाम काल भोज था, परन्तु प्रजा-प्रियता के कारण उसका नाम बाप्पा पड़ा। यदि हमारे पाठकों की इच्छा हुई तो इस जीवनी का लेखक बहुत शीघ्र बाप्पा रावल की जीवनी पाठकों की सेवा में उपस्थित करेगा (लेखक:)

† देखो:—Anuals and Antiquities of Rajasthan,—By Col. Tod.

तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था। उन्हीं बाप्पाराव के वंशधरों के हाथ में आज तक मेवाड़ चला आता है। चित्तौड़ के राजपूतगण आज भी, बाप्पाराव को अपना आदि पुरुष कह कर देवतुल्य पूजा करते हैं।

बाप्पा रावल के बहुत से पुत्र हुये थे जिन्हों ने अपने भुजबल से दूर दूर तक अपना अनन्त वैभव बढ़ाया था। इस समय उस के वंशधरों के अधिकार में उदयपुर डूंगरपुर, प्रतापगढ़ और बांसवाड़ा ये चार रियासतें हैं। नैपालका स्वतन्त्र राज भी सीसोदिया वंश के राजपूतों का बतलाया जाता है और औरंगज़ेब के दांत खट्टे करने वाले प्रातः स्मरणीय शिवाजी महाराज भी सीसोदिया वंश के ही कहे जाते हैं। अस्तु हम मेवाड़ का इस समय स्वतन्त्र इतिहास लिखने नहीं बैठे हैं इस लिये कालक्रम की घटनाओं को छोड़कर केवल यही कहना है कि बाप्पारावल की नवीं पीढ़ी में रावल खुमान बहुत प्रसिद्ध हुये थे उन्होंने एक भीषण युद्धमें *खुरासानके एक आक्रमणकारी के दांत खट्टे किये थे उस समय भारतवर्ष का विशेष अधःपतन नहीं हुआ था आज कल की भांति उस समय भारतवर्ष के हिन्दू अपने आत्मसम्मान को तिलाञ्जलि नहीं दे चुके थे, उस समय तक हिन्दू नरेश स्वाधीनता और एकता देवी की उपासना से मुंह नहीं मोड़ चुके थे। एक हिन्दू नरेश की विपत्ति में सब हिन्दू नरेश सम्मिलित होते थे। अतएव रावल खुमान सिंह की सहायता के लिये बड़ी बड़ी दूर से हिन्दू नरेश

*कई प्राचीन पुस्तकों में महमूद खुरासानी लिखा है; परन्तु कर्नल टाड का अनुमान है कि वह खलीफ़ा मामूं था। जिसको अपने बाप खलीफ़ा हारू से खुरासान, जबूलिस्तान, काबुल, सिन्ध और हिन्दुस्तान के वे इलाक़े जो उसके अधीन थे, मिले थे। (लेखक)

खुराशान के आक्रमणकारी से लड़ने के लिये इकट्ठे हुये अपने सहायक हिन्दू नरेशों की सम्मिलित चेष्टा से खुमानसिंह जी ने विजय लाभ की थी। खुमानसिंह जी बड़े प्रतापी थे रावल खुमानसिंह जी से रावल समरसिंह जी तक कितने ही राजा गद्दीपर बैठे परन्तु समर सिंह जी बड़े शूरवीर हुए थे जिस समय पारस्परिक फूट से क्षत्रियकुलकलंक भारत माता को पराधीनता की बेड़ी जकड़नेवाले कन्नौज के जयचन्द्र से इशारा पाकर शहाबुद्दीन ग़ोरी ने अन्तिम हिन्दू नरेश पृथ्वीराज की राजधानी दिल्लीपर आक्रमण किया था उस समय * समरसिंह जी अनुपम वीरता का परिचय देकर समर में वीरगत को प्राप्त हुये थे।

समरसिंह जीके समान ही मेवाड़ के अनेक अगणित वीरों ने समय समयपर अद्भुत परिचय देकर संसारको चकित और स्तम्भित कर दिया था समरसिंह जी के पश्चात कितने ही राणा गद्दी पर बैठे थे परन्तु सवत् १३३१ (सन् १२७५ ई० में) राणा लखमसी या लक्ष्मणसिंह जी गद्दी पर बैठे थे। राणा जी के समर्थ न होने तक उनके काका भीमसिंह राजकार्य करते रहे। भीमसिंह की महारानी पद्मावती को

* समर सिंहजी ने युद्ध में बड़ी वीरता प्रकट की था। उनके पुत्र कल्याण मुसलमानों से युद्ध करते हुए मारे गये तब भी उनको कुछ शोक नहीं हुआ। जिस समय वह युद्ध कर रहे थे, उस समय उन्हें पृथ्वीराजके मरनेका समाचार मिला। पर समाचार सुनकर भी अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं हुए। कोई कोई इतिहास लेखक कहते हैं कि पृथ्वीराज मारे नहीं गये थे, उनको शहाबुद्दीन ग़ोरी ने जीता हुआ पकड़ा था स्वर्गीय कविराज श्यामलदासजी का मत है कि समर सिंहजी पृथ्वीराज के समकालीन नहीं थे परन्तु मथुरा के स्वर्गीय पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने इसका खंडन एक शिला लेख

हरण करने के लिये दिल्लीश्वर अलाउद्दीन खिलजी ने मेवाड़ पर चढ़ाई की थी। राजपूत वीरों ने उस समय अलाउद्दीन खिलजी के खूब दांत खट्टे किये थे, परन्तु अगणित मुसलमान सैनिकों के सामने राजपूत वीर कब तक ठहर सकते थे, अतएव चित्तौड़ का भाग्य फूट गया, महाराणी पद्मावती तथा अन्य राजपूत महिलाओं ने अग्नि में कूदकर अपने कोमल प्राणों को अग्निदेव की आहुति देकर धर्म की रक्षा की थी। राजपूत वीरगण छः मास तक लगातार लड़ते रहे थे। ... ...

मेवाड़ की स्वाधीनता नष्ट होजाने पर भी, मेवाड़ मुसलमानों के हाथों में बहुत दिन नहीं रहा। अपनी मातृभूमि की दुर्दशा देखकर मेवाड़ के क्षत्रिय वीरों की हड्डियों में स्वाधीनता के लिये खून उबल उठा। उन्होंने थोड़े दिन पीछे ही अपनी मातृभूमि मेवाड़ में स्वाधीनता की ध्वजा पताका फहराय दी। महाराणा हम्मीर सिंह जी के समय में जो लक्ष्मण-

के आधार पर किया है। कविराज श्यामलदास जी का यह भी मत है कि चन्द्रकविकृत जो "पृथ्वीराज—रासो" विख्यात है, वह असली रासौ नहीं है। स्वर्गीय पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या स्वर्गीय कविराज श्यामलदास जी के इस मत के प्रतिकूल थे।—मेवाड़ के स्वर्गीय महाराणा सर फतेह सिंह जी के समय कविराज श्यामल दास जी ने मेवाड़ का वृहत इतिहास "वीर विनोद" लिखा था, जिसका कुछ अंश यहां के "सज्जन कीर्त्ति सुधारक" यन्त्रालय में छपा भी था, परन्तु न मालूम इस इतिहास का छपना क्यों बन्द करदिया गया, छपा हुआ अंश भी प्रकाशित नहीं होने पाया। हमारी मेवाड़ के वर्त्तमान अधीश्वर महाराणा सर फतेहसिंहजी० सी० आई० ई० से प्रार्थना है कि वे इस इतिहास को प्रकाशित करके इतिहास प्रेमियों के कौतूहल को निवारण करने की कृपा करें।—लेखक।

सिंह जी से पीछे कई पीढ़ियों में हुए हैं, मेवाड़ पूरी ओज पर था। उसके पीछे कितने ही महाराणा चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे. उन्होंने अनेक सङ्कटों का सामना करते हुए, मेवाड़ की स्वाधीनता की तथा चित्तौडगढ़ के गौरवकी पूर्ण रक्षा की थी। अनेक विपदों से घिरने पर भी वे अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं हुए थे। महावीर हम्मीर के सौ वर्ष पीछे राणा कुम्भाजीने मेवाड़ की विशेष उन्नति की। पराजित शत्रुको पददलित करना ही वीरों को शोभा नहीं देता है, मरे को मारने से क्या बहादुरी है! हारे हुए शत्रु के साथ दयापूर्ण व्यवहार करना भी सच्चे वीरका कर्त्तव्य है। राणा कुम्भाजीका चरित्र भी ऐसे देव भाव से भरा हुआ है। उन्होंने कितनी ही बार अपने वैरियों के छक्के छुड़ा दिये थे, गुजरात और मालवा देश के मुसलमानों को रणक्षेत्र में से भगा दिया था। परन्तु फिर भी उन्हों ने अपनी शरण में आये हुए वैरियों के साथ अच्छा व्यवहार किया। राणा कुम्भा जी के समान देवभाव से भरा हुआ चरित्र बहुत ही कम मिलता है।

यह बात नहीं है कि चित्तौड़में अन्यान्य देशों और भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों के समान कुल कलङ्क और कुलाङ्गार उत्पन्न न हुए हों। चित्तौड़ में भी समय समय पर कुलाङ्गार और कपूत सन्तानें हुई हैं, उनके खोटे कार्य्यों को देखकर कहना पड़ता है कि परमात्मा की भी ऐसी इच्छा थी कि चित्तौड़ के गौरव की रक्षा हो। क्योंकि मेवाड़ के इतिहास के मनन करने से पता लगता है कि जब कभी चित्तौड़ में एकाध कुल कलङ्क और देशद्रोही उत्पन्न हो भी गया है तब चित्तौड़ के अधिकांश राजपूत वीरों के हृदय में अपने देश के गौरव

की रक्षा का ही भाव रहा है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि एक दो कुलकलङ्क के पीछे, चित्तौड़ के सब ही लोग अपने देश से शत्रुता कर बैठे हों अथवा सोने के लालच में अपनी मातृभूमि को पराधीनता की बेड़ी में जकड़वा दिया हो महाराणा कुम्भा जी के ही कुलाङ्गार, कुलकलङ्क पुत्र उदय सिंह जी हुए थे। कुलकलङ्क उदय सिंहजी ने अपने पिता, महाराणा कुम्भाजी को विष दे दिया था। जिससे कुम्भा जी का देहान्त हुआ।

पितृघातक उदयसिंह ने कुछ काल तक मेवाड़ की राजगद्दी को तथा बप्पारावल के पवित्र सिंहासन को कुछ दिन तक कलंकित अवश्य किया था, उदयसिंह के समय में मेवाड़ को राणा कुम्भाजी के परिश्रम, वीरता और बुद्धि बल से जो गौरव प्राप्त हुआ था, उसका बहुत ही ह्रास हुआ। पर चित्तौड़ के राजपूत मुसलमानों के समान न थे, जिन्होंने अपने पिता को कैद करने वाले और भाइयों की हत्या करने वाले औरङ्गजेब का साथ दिया था। राजपूतगण अपनी मातृभूमि की दशा देखकर विह्वल होगये, महाराणा कुम्भा जी के जेठे कुमार रायमल जी ने उदयसिंह से चित्तौड़ को अपने हस्तगत कर लिया। उदयसिंह—दिल्ली मुसलमान बादशाह से सहायता के लिये प्रार्थना करने गये और बादशाह को सहायता के उपलक्ष में अपनी बेटी ब्याहने का प्रण भी किया। परन्तु राजाओं के राजा, महाराजाओं के महाराज, सम्राटों के सम्राट जगदीश्वर को यह मंजूर न था कि सिसोदिया वंश को कलंक लगे। वाप्पारावल का पवित्र वंश अपवित्र हो, चित्तौड़ की मानमर्यादा नष्ट होजावे। बस उदयसिंह ज्योंही बादशाह से अपनी बेटी देने की प्रतिज्ञा करके

चला, त्योंही उस पर बिजली गिरी। मानों परमात्मा ने मेवाड़ के राणाओं की इस प्रतिज्ञा की रक्षा की कि "हम कभी अपनी बेटी मुसलमान बादशाहों को नहीं देंगे" मेवाड़के इतिहास में ऐसी ऐसी घटनाओं को देखकर ही कहना पडता है कि यह कहावत ठीक ही है कि जो धर्म की रक्षा करता है उसकी ओर भगवान भी होते हैं।

राणा रायमल के समय में भी मेवाड़ अपनी पूरी ओज पर था। पर भारतवर्ष के आदर्श, उच्च आदर्श बहुत कुछ बदल चुके थे। महाभारत के महासंग्राम के पीछे, भाई भाई में जो चाण्डालिनी फूट प्रचलित होगई थी। उस चाण्डालिनी फूट ने *राणा रायमल के तीन पुत्रों के हृदय में भी स्थान प्राप्त

* राणा रायमल जी के तीन पुत्र थे ज्येष्ठ पुत्र बाबर के साथ लड़नेवाले सांगा या संग्रामसिंहथे, दूसरे पृथ्वीराज तीसरे जयमल। संग्रामसिंह वीर, शान्त, और गम्भीर स्वभाव के थे। पृथ्वीराज बड़े पराक्रमी, साथही उत्पाती थे। ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण संग्राम सिंह राजसिंहासन के उत्तराधिकारी थे। पृथ्वीराज और संग्राम सिंह में पारस्परिक झगड़ा राज्य के लिये हुआ था, जिससे संग्राम सिंह भाग गये थे। इसपर क्रुद्ध होकर रायमल ने पृथ्वीराज को अपने राज्य से निकाल दिया था। पृथ्वीराज की वीरता के सम्बन्ध में इतिहास में बहुतसी आश्चर्यजनक घटनाएँ मिलती है। कहते हैं, एक बार चित्तौड के दरबार में मालवा देश के बादशाह का एक सेवक आया था राणा रायमल उससे बड़ी सादगी से बातचीत कर रहे थे। पृथ्वीराज को सेवक के प्रति अपने पिता रायमल का यह बर्ताव बुरा लगा। वे सोचने लगे कि जिन रायमलजी के पिता राणा कुम्भा ने मालवा के बादशाह को छः महीने तक कैद में रखकर छोड़दिया था, उन्हीं के पुत्र रायमल बादशाह के सेवकसे इस तरह नम्रता से बातें कर रहे हैं। यह विचार कर अपने पिता से बादशाह के सेवक से बातचीत करने की मनाई की, जिसपर रायमलजी ने कहा:—

कर लिया था। जिसके कारण उस समय मेवाड़ की विशेष उन्नति नहीं हो सकी।

"पृथ्वीराज! भाई तू बड़े बादशाहों को कैद करनेवाला होगा पर मुझे तो अपना राज्य बचाना है"। बस इसी पर पृथ्वीराज दरबार से उठ दिये और अपनी सेना इकट्ठी करके मालवा पर चढ़ाई करदी और बादशाह को कैद कर लेआये और अपने पिता के चरणों में रख दिया और कहा "पिता जी! इस मालवी दास से पूछो कि यह कौन है? इस भांति अपने पिता की व्यङ्गोक्ति का उत्तर दिया और बादशाह को एक महीने तक कैद में रख कर फिर उसे आदरपूर्वक छोड़दिया। जिस समय का हम यह वृत्तान्त लिख रहे हैं, उस समय भारतवर्ष अपने प्राचीन आदर्शों से बहुत कुछ गिर चुका था। परन्तु उस बिगड़ी दशा में भी राजपूतों में आपसमें जो लड़ाई झगड़े होते थे, उनके वृत्तान्त सुनने से ज्ञात होता था कि वह भारतवर्ष के लिये सुवर्ण युग था। पृथ्वीराज और उनके चाचा सूरजमलजी के पारस्परिक युद्ध का हाल पढ़कर चकित और स्तम्भित होना पड़ता है। सूरजमल और पृथ्वीराजमें चित्तौड़ की गद्दी के लिये झगड़ा होगया था। दिनभर पृथ्वीराज और सूरजमल दोनों में खूब युद्ध हुआ, एक दूसरे की सेना की मुठभेड़ हुई। अन्त में दोनों की सेनाओं ने रात्रि होजाने के कारण युद्ध बन्द किया और विश्राम करने लगे। उस समय पृथ्वीराज और सूरजमल में जो वार्तालाप और मिलन हुआ था वैसा शायद अन्य किसी देशके इतिहास में देखनेमें नहीं आता है। लड़ाई हो चुकने के पीछे पृथ्वीराज अपने काका सूरजमल जी के पास गये। और पूछा:—काकाजी अब आप के घाव कैसे हैं?" सूरजमल उस समय घाव सिलवा रहे थे। सूरजमलः—"बेटा! तुमको देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। इस लिये घाव सूख गये। इसके पीछे पृथ्वीराज ने भोजन मांगा। काका भतीजे दोनों ने साथ भोजन किया। चलते समय पृथ्वीराज ने अपने काका का दिया हुआ पान भी खालिया और कुछ शंका भी नहीं की। दूसरे रोज सुबह अपने काका से युद्ध करने और उसी दिन युद्ध समाप्त करने की प्रतिज्ञा करके चले गये। दूसरे दिन फिर युद्ध हुआ और युद्ध हो चुकने

कितने ही इतिहास लेखकों ने ग्रीस देश की कतिपय महत्वपूर्ण घटनाओं को लेकर आकाश पाताल एक कर दिया है। परन्तु खोज और तलाश की जाय तो भारतवर्ष के इतिहास में एक से एक बढ़कर महत्वपूर्ण घटनाएं हुई हैं। यदि ग्रीस को ब्रूतस के कारण अभिमान है तो इस गये बीते समय में आज भी भारतमाता का राणा रायमल के कारण मस्तक ऊंचा है। यदि ब्रूट ने अपने पुत्र को न्याय की रक्षा के लिये प्राणों का *दण्ड दिया तो राणा रायमल ने, न्याय और धर्म की रक्षा के लिये अपने पुत्रके प्राणघातक को सोने के कड़े और बदनौर का राज्य पारितोषिक स्वरूप दिया† इस

के पीछे चाचा भतीजे फिर वैसे ही मिले कि मानो युद्ध हुआ ही नहीं था। अहा! वह भारतवर्ष का कैसा सुन्दर सुहावना समय था। कर्नल टाड इस घटना को अपने इतिहास में उल्लेख करके, निम्न टिप्पणी लिखी है:- "It will shew the manners and customs so perculia to the Rajputs, to describe the meeting between th rival uncle and nephew—unique in the details o strife, perhaps, since the origin of man—Col. Todd— लेखक।

*जब रोममें प्रजातन्त्र राज्यकी स्थापना हुई थी तब कलेतिनियस का भतीजा और ब्रूटस का पुत्र प्रजातन्त्र राज्यके नष्ट करनेमें अभियुक्त हुये थे कलेतिनियस ने अपने भतीजे को वंचित दण्ड से कुछ कम दण्ड देना चाहा पर ब्रूटस ने अपने पुत्र को प्राणदण्ड की आज्ञा दी। लेखक

† लीला नामक एक पठान ने राव सुरतान का राज्य टोंकाटोड छीन लिया था। सुरतान की पुत्री तारावती बड़ी रूपवती और वीराङ्गना थी। उसने अपने पिता का राज्य छुड़ाने की कठोर प्रतिज्ञा की। राणा रायमल का पुत्र जयमल तारावती के गुणों और रुप की प्रशंसा सुनकर, उससे विवाह

लैण्ड के एक राजकुमार को एक जज के जेल दण्ड देने पर अङ्गरेज़ी इतिहास लेखकों ने इङ्गलैण्ड के उस समय के अधीश्वर की मुक्त कंठ से प्रशंसा की* । परन्तु हाय ! अपने प्यारे पुत्र के वध पर राणा रायमल ने अपना कलेजा पत्थर से भी भारी और कड़ा करके, पुत्र के घातक के प्रति जो असीम उदा-

करने को तैयार हुआ । राव सुरतान ने जयमल का यह प्रस्ताव स्वीकार किया पर कहा कि पहले हमारा राज्य मुसलमानों के हाथसे छुड़ा दो तब हम तारा तुमको देंगे । जयमल ने भी पठानों के हाथ से राव सुरतान के राज्य छुड़ाने की प्रतिज्ञा की परन्तु अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के पहले ही तारा को लेना चाहा था, बस इसी पर क्रुद्ध होकर सुरतान ने जयमल को मार डाला था। उस समय राणा रायमल के जेठे बेटे संग्राम सिंह का कहीं पता न था दूसरे बेटे पृथ्वीराज को राज से निकाल दिया था । केवल एक जयमल ही उनका पुत्र मौजूद था । परन्तु अपने पुत्र के घातक से बदला नहीं लिया । जयमल के मरने पर उन्होंने धैर्य, गम्भीर भाव से यही कहा:—"जिसने लड़की के बाप की इज़्ज़त लेनी चाही, सो भी उसकी अपनी दशामें, उसे जो प्राणदण्ड दिया गया है सो उचित ही है" ।—लेखक

* इङ्गलैण्ड के इतिहास की घटना यह है:—"इङ्गलैण्ड का एक बादशाह स्यात् जिसका नाम (Henry V) पांचवा हैनरी था, ठीक २ इस समय याद नहीं आता, युवराज रहते समय बड़ा उत्पाती था। एक बार युवराज रहते समय, जब जोसाहब ने उसके एक साथी को किसी अपराध में जेल का दण्ड दिया । इस पर गुस्से में आकर युवराज ने जज के मुंह पर एक थप्पड़ मारा । जजने इसका विचार न करके कि वह युवराज है उसको भी जेल की सज़ा दी । जब बादशाह ने इस घटना को सुना तो जज और युवराज दोनों की प्रशंसा की । कहते हैं जब युवराज पाचवें हैनरी के नाम से बादशाह हुआ तब वह उस जजसे जिसने उसको युवराज रहते समय सज़ा दी थी कुछ भी नाराज नहीं हुआ, किन्तु उसके साथ न्यायशील होने के कारण अच्छा बर्ताव किया ।

रता प्रकट की थी, उसका बहुत से इतिहासों में नाममात्रको भी चर्चा नहीं है।

राणा रायमल के पीछे संग्रामसिंह जी ने चित्तौड़ के राज सिंहासन को सुशोभित किया था। "यथा नामस्तथा गुणः"—जैसे संग्रामसिंह जी का नाम था, वैसे ही वे गुणों में अलौकिक थे। वास्तव में संग्रामसिंह—संग्राम सिंह ही थे। उन्होंने समरक्षेत्र में समय समय पर अपनी अलौकिक वीरता का परिचय देकर राजस्थान भर को मुग्ध करलिया था। उनके समय में समस्त राजपूत सामन्तगण एक ही विजय-वैजयन्ती के तले इकट्ठे हुये थे। भारतवर्ष के लिये वह विलक्षण समय था। "हथिनी सी लक्ष्मी विचल. इत उत झोंका खाय"—कवि के उपर्युक्त शब्दों के अनुसार—दिल्ली के राजसिंहासन के लिये मुसलमानों के कितने ही वंशों में पारम्परिक झगड़े हो चुके थे और हो रहे थे। तुग़लक, सय्यद, खिलजी,लोदी अनेक मुसलमानी वंश, महाराज युधिष्ठिर तथा महाराज पृथ्वीराज राजधानी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) में अपनी लीला दिखा चुके थे। उस समय तक राजपूतों ने राष्ट्रविप्लव का साथ नहीं दिया था उन्होंने दिल्ली के बादशाह की अधीनता स्वीकार नहीं की थी। उस समय तक राजपूतगण सोने चांदी के लोभ में अपनी प्राणप्यारी जन्मभूमि की स्वतन्त्रता बेचने के लिये तैयार नहीं हुये थे। उस समय तक राजपूताने के क्षत्रिय वीरों ने देश द्रोहिता का टीका अपने माथे पर नहीं लगाया था। सोलहवीं शताब्दीके आरम्भ में जिस समय संग्रामसिंह मेवाड़ के राजसिंहासन पर विराजे थे, उस समय इब्राहीम लोदी, दिल्ली का बादशाह

था। उसी समय मुगलराज्य की जड़ जमानेवाले बाबर ने भारत पर आक्रमण किया था।

बाबर अन्यान्य आक्रमणकारियों के समान केवल धन दौलत के लूटने की ही इच्छा नहीं रखता था। किन्तु उसकी महत्वाकांक्षा अपने राज्य की जड़ जमाने और उसके विस्तार करने की पूरी थी। लोदीवंश का सौभाग्य सितारा उस समय डूब चुका था। पानीपत के मैदान में इब्राहीम लोदी और बाबर में युद्ध ठन गया। विजय लक्ष्मी इब्राहीम लोदी से रूठ गई और बाबर पर प्रसन्न होकर उसको जयमाला पहिनाई। बाबर ने लोदी वंश पर विजय प्राप्त करते ही अपने राज के विस्तार करने की चेष्टा प्रारंभ की इधर राणा संग्रामसिंह जी भी बाबर की करतूतों से ग़ाफिल न थे। उन्होंने देखा कि इस समय तनिक भी निश्चिन्त रहने से समस्त हिन्दू राज्य यवनों के पदाक्रान्त होगा बाबर से लड़ने के लिये तयारियां करने लगे। प्रथम युद्ध में बाबर * राणा सांगा जी से पराजित हुआ पहले युद्ध में मुगल सेना के धुर्रे उड़ गये थे। राजपूत सेना की वीरता देखकर मुगल सेना बड़ी हताश हुई। पर बाबर उन माई के लालों में से न था जो असफलता प्राप्त होने पर निराशा के सागर में गोते खाने लगते हैं। अथवा हतबुद्धि होकर अपने उद्देश्य से मुंह फेर लेते हैं। पहिली बार युद्ध में सफलता प्राप्त न होने पर उसने फिर युद्ध की ठानी † राणा सांगाजी भी सच्चे क्षत्रिय वीर की भांति

* राणा सग्रामसिंह जी का दूसरा नाम राणा सांगा था—लेखक

† साधु सराहैं साधुता, जती जोखिता जान, रहिमन सांचे सूर को बैरी करैं बखान"—ठीक ही है बाबर ने अपनी जीवनी में राणा सांगा की बड़ी

बाबर से मुक़ाबले को आगे बढ़े।

प्यारे पाठको! जानते हो कि इस देश का भाग्य क्यों फूटा है? अनेक वीर लालों के होते हुये भी हमारी भारत माता के पैरों में पराधीनता की बेड़ी कैसे जकड़ दी गई थी? इस देश के अनेक कुलकलंक और भारतमाता के अपने कपूतों के कारण ही न! जिस समय राणा सांगा बाबर के मुक़ाबले के लिये आगे बढ़े उस समय बाबर ने सन्धि का प्रस्ताव उपस्थित किया राणा सांगा जी की ओर से रायसेन का राजा सलहदी तोंवर सन्धि की बातचीत करने लगा और वह विश्वासघाती देशद्रोही सलहदी तोंवर बाबर से मिल गया जिससे दूसरे युद्ध में राणा जी हार गये, अरे कुलकलंकी! नराधम!! सलहदी तोंवर!!! तुझ जैसा कपूत भारत माताकी कोख में उत्पन्न न हुआ होतातो इस देशका इतिहासही पलटा खा जाता। परन्तु विधि के विधान को कौन रोक सकता है। इस युद्ध के थोड़े दिन पीछे ही महाराणा संग्रामसिंह उपनाम सांगा जी परलोक को सिधार गये जिससे हिन्दू जाति की विशेषतः राजपूतों मेवाड़ के क्षत्रिय वीरोंको सब आशाएं

तारीफ़ लिखी है। राणा सांगा ने मालवा गुजरात तथा अन्य स्थानों के मुसलमानों से अठारह बार युद्ध किया था। सभी युद्धों में राणा सांगा को जय प्राप्त हुई थी। उनका समस्त जीवन वीर धर्म पालन करने ही में बीता था। वीरव्रत पालन करने में ही उनकी एक आंख, एक हाथ और एक पैर नष्ट होगये थे, परन्तु तब भी वे अपने व्रत से टले नहीं। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि बादशाही सेना पर विजय प्राप्त किये बिना कभी अपनी राजधानी चित्तौड़ में नहीं आऊंगा। यह प्रतिज्ञा करके वे पहाड़ों में चले गये थे। परन्तु इस प्रतिज्ञा के थोड़े दिन पीछे ही उनका देहान्त होगया, जिससे उनकी यह मनोकामना पूर्ण नहीं हो सकी—लेखक।

मिट्टी में मिल गई। राजपूत जाति और मेवाड़ भूमि अनाथ हो गई।

संग्राम सिंह की मृत्यु के पीछे मेवाड़ राज्य में बहुत कुछ उलट फेर हुए। जिनके यहां लिखने की आवश्यकता नहीं है केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि साँगा जी के पीछे उनके दो बेटे रत्नसिंह और विक्रमादित्य ने बारी बारी से कुछ वर्ष तक राज्य किया था। रत्नसिंह वीर थे अपनेके पिता के राज्य में से एक अंगुल जमीन भी बाबर अथवा मालवा के बादशाह के हाथ में नहीं जाने दी किंतु वीर होने के साथ हीसाथ रत्नसिंह कुछ उजड्ड और क्रोधी भी थे। इसी से बूंदी के *

* बूंदी के राव सूरजमल जी से रत्नसिंह जी के झगड़े का कारण यह था:—"भीनगर के प्रधान राजा सारंगदेव के दो पुत्रियां थीं, एक रत्नसिंह जी को ब्याही थी, दूसरी बूंदी के राव सूरजमल को, इस लिये दोनों में पारस्परिक अत्यन्त प्रीति थी। परन्तु वही प्रीति दोनों के लिये विषमय फल उत्पन्न करनेवाली हुई। कहते हैं, एक समय बूंदी के राव सूरजमल जी चितौड़ में सो रहे थे, वहां पुरबिया सरदार ने हंसी में एक तिनका से राव का कान गुदगुदा दिया। राव जो अचेत सो रहे थे, चौंककर उठ बैठे और अपने खांडे से पुरबिया को वहीं मारडाला। पुरबिया का लड़का पूरण मल्ल अपने पिता का बदला लेने का अवसर ढूंढने लगा और राणा जी के कान रावके विरुद्ध भरने लगा। एक समय सूरजमलजी अपनी श्वसुराल गये थे, वहां बड़ी साली—राणा जी की रानी भी मौजूद थी। राणा जी की रानी के अनुरोध से, तीर से एक पालतू सिंह को मार गिराया, इस पर रावजी की साली को बड़ा अचम्भा हुआ। चितौड़ पहुंच कर रावजी की साली ने अपने पति राणा जी से कहा। राणा जी ने समस्त वृत्तान्त अपने पुरबिया सरदार पूरनमल से कहा। अवसर पाकर पूरणमल ने यह पट्टी पढ़ा दी कि राव जी ने आपकी रानी जी से मित्रता गांठली है। इस वहम में आकर

राव सूरजमल को एक घरू झगड़े के कारण मारकर आप भी उन्हीं के हाथ से मारे गये।

विक्रमादित्य में वीरों के योग्य कोई गुण न थे। गुजरात के बादशाह ने दूसरी बार चित्तौड़ को विध्वंस किया था। उस समय राजपूत गण भोग विलासी और डरपोक राजा की आधीनता के अभ्यासी न थे। विक्रमादित्य अपने क्षत्रिय वीरों को किसी तरह से प्रसन्न नहीं कर सके। प्रसन्न करना तो दूर रहा उलटा अपने कर्मों से अपने राजपूत सरदारों को नाराज़ कर दिया। जिससे मेवाड़ के सरदारों में अनबन हो गयी थी। इसमें सन्देह नहीं कि घरकी फूट जगतमें बहुत बुरी होती है वैरियों को घरकी फूटसे लाभ उठाने का अवसर मिल जाता है बस इस फूट से चित्तौड़ को सदैव के लिये अपने आधीन करनेसे मालवा और गुजरात के मुसलमान बादशाह क्यों चूकने लगे दोनों ने मिलकर मेवाड़ को बांट लेना चाहा था। परन्तु विक्रमादित्यसे लाख अप्रसन्न रहने पर भी राजपूत वीरों

राणा जी रावजी के प्राण लेने को उतारू हो गये। वे सूरजमल जी के मारने के विचार से बूंदी आये और उनसे शिकार खेलने के लिये कहा। दूसरे दिन राणा राव दोनों शिकार खेलने गये, वहां राणा और उनके साथियों ने राव पर धावा किया, जिसमें राव मारे गये. पर रावने मरते मरते राणा और उसके पांच साथियों की जान लेली। कहते हैं, जब एक नौकरने राव सूरजमल की माता से उनकी मृत्यु समाचार कहा तब राव की माता ने बड़े जोश से कहा कि मेरा बेटा अकेला ही मारा गया है,? कोई पुत्र जिसने मेरा दूध पिया है, अकेला नहीं मारा जा सकता है। जैसेही राव माता ने कहा वैसेही स्तनोंमें से ऐसे ज़ोर से दूध की धार निकली कि जिस पत्थर पर दूध की धार टपकी वह पत्थर ही टूट गया। इतने में ही राव की माता को समाचार मिला कि रावने मरते मरते राणा सहित पांच आदमियों को मार दिया है" —लेखक

ने चित्तौड़गढ़ की रक्षाके लिये अपने प्राणोंकी आहुति दी और चित्तौड़ में दूसरा शाका * हुआ।

कुछ दिनों के लिये चित्तौड़ गढ़ उस समय मुसलमानों के हाथ में चला गया था। परन्तु राजपूत वीरों ने किसी न किसी तरह से उसका फिर उद्धार किया। राणा विक्रमादित्य को राजगद्दी से हटा कर बनवीर को गद्दी पर बिठलाया और यह सलाह ठहरी कि जब तक उदय सिंह बड़े न हों तब तक बनवीर राज्य करें। बनवीर पृथ्वी राज का दासी पुत्र था।—उसकी इच्छा हुई कि उसके रहते हुए

* शाका उसे कहते हैं कि जब राजपूत लोग निराश होकर केसरिया बाना पहन कर शत्रु से लड़ने जाते हैं। उस दशा में राजपूत ललनाएं अग्नि में कूद कर प्राणों की आहुति देदेती हैं। इस भांति पहला शाका अलाउद्दीन खिलजी के समय में हुआ था। दूसरा शाका यह हुआ, इस शाके में बारह हजार ललनाओं ने अग्नि में कूद कर अपने धर्म की रक्षा की थी। राजमाता जवाहरबाई ने इस युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई थी, वह कवच पहन कर युद्ध स्थल में पहुंच गई हाथ में तलवार लेकर मुसलमानों से स्वयं युद्ध करने लगी और राजपूत वीरों को उत्साहित करने लगी। मुसलमानों की तोप का गोला राजमाता जवाहिर बाई के शरीर में लगा जिससे युद्ध में उसका देहान्त हो गया। इस युद्ध में ३२ हजार राजपूत मारे गये। यह शाका सन् १५३० ई० में हुआ था। जब उदयसिंहजी की माता कर्णवती ने देखा कि युद्ध में जवाहिर बाई मारी गई तब यह विचारकर कि कहीं यवनलोग राजपूत ललनाओं को स्पर्श न करें अग्नि में कूद कर धर्म की रक्षा करने के लिये राजपूत स्त्रियों को उत्साहित किया था। बूंदी के राजाओं ने इस युद्ध में अच्छी वीरता दिखलाई थी। लेखक।

चित्तौड़ की राजगद्दी पर कोई न बैठे। अतएव पहले उसने विक्रमादित्य की हत्या की पीछे उसने बालक उदयसिंह को भी मार डालना चाहा। बनवीर के ऐसे खोटे विचार को देख कर उदयसिंह की धायने, जिसका नाम पन्नादासी था, अपने स्वामीपुत्र, राजपुत्र चित्तौड़ के उत्तराधिकारी, भावी राजा की रक्षा करने की ठानी। पन्ना ने उदयसिंहजी की रक्षा के लिये जो कुछ किया था, उसने उसका नाम चित्तौड़ के इतिहास में भारतवर्ष के इतिहास में, नहीं नहीं संसार के इतिहासमें सदैवके लिये सुनहले अक्षरोंमें अङ्कित करदिया। कहो! जानते हो!! अपने स्वामी और राजपुत्र की रक्षा के लिये, उस अबला ने अपने किस आत्मिक बल का परिचय दिया था? उस अबला ने जिस भाँति सबलहृदय होकर आत्मोत्सर्ग का ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित किया था, वैसा उदाहरण संसार की उन्नतिशील जाति के इतिहास में बहुत कम देखने में आवेगा * पन्ना ने राजपुत्र उदय सिंह को एक टोकरी में सुलाकर फूलपत्तों से ढककर एक नाई से कहा कि इसे अमुक स्थानमें ले जाओ और उदयसिंहके स्थानमें प्राणोंसे प्यारे अपने पुत्रको सुला दिया। जब बनवीर आया तब अंगुली का इशारा अपने बेटेकी ओर कर दिया। बनवीरने पन्ना दासीके पुत्रको, उदय सिंह समझकर वध कर डाला। पन्ना की आँखों के सामने सर्वदा को उसका दीपक बुझगया। अपने पुत्र के मारे जाने पर, उदय सिंह मारे गये कह कर पन्ना उच्च स्वर से रोने लगी। पन्ना को रोते देखकर और उदय सिंह जी के मारे जाने का समाचार सुनकर रनवास में हाहाकार मच गया। इस भाँति उदय सिंह की रक्षा हुई, बेचारी पन्ना ने अपनी

आंखों के तारे, दुलारे का वध देखा। जाओ! पन्ना!! जाओ!!! जब तक संसार है तब तक तुम्हारी अनन्तकीर्ति रहेगी। तुम्हारे यश की विमल ध्वजा पताका फहराती रहेगी।— तुम्हारी कीर्ति की माला जपी जायगी। तुम सरीखी उन्नत हृदयों के लिये ही (१) कवि कहता है:—

"दूजे के हित प्राण दे, करे धर्म प्रतिपाल
को ऐसो (२) शिवि के बिना, दूजो है या काल"

कहो! पाठक॥ क्या चित्तौड़ गढ़ को, मेवाड़ भूमि को अब भी सच्चा तीर्थ न कहोगे? भला सोचो तो सही इससे बढ़कर कौनसा पवित्र स्थान होगा, जहां धर्म और देश की रक्षा के लिये आत्म त्याग के ऐसे उदाहरण मिलते हैं। धन्य वह भूमि है जहां पन्ना जैसी उन्नत हृदया दासियां जन्म लेती हैं। पांच हज़ार वर्ष से लगातार अनेक विपत्तियों के आने पर भी हिन्दू जाति जो अब तक जीवित है वह केवल पन्ना दासी जैसी स्त्रियों के कारण ही।

पन्ना ने अनेक स्थानों में उदयसिंह को छुपाने की चेष्टा की अनेक स्थानों में उदय सिंह को आश्रय देने की प्रार्थना की परन्तु कहीं भी आश्रय नहीं मिला। वनवीर के डर के मारे किसी को भी उदय सिंह को अपने यहाँ रखने की हिम्मत नहीं हुई। भला किस को अपने प्राणों से हाथ धोने थे, जो वनवीर से दुश्मनी ठानता। कितनही स्थानों में आश्रय के लिये भटकती हुई पन्ना कमलमीर में पहुंची और कुम्भमेरु दुर्गाधि-

(१) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र (२) राजा शिवि ने अपने शरणागत में आये हुए एक कबूतर के लिये अपने प्राणोंको देकर उसकी रक्षा की थी। —(लेखक)

पति जैन धर्मावलम्बी आशासा से आश्रय भिक्षा मांगी। अपनी माता की आज्ञा से आशासा ने उदय सिंह को अपने यहां शरण दी और अपना भांजा कहकर उदय सिंह का प्रतिपालन करने लगे।

भला कहीं गूदड़ी में भी लाल छुपे हैं, कहीं अग्नि भी वस्त्रों में छुपाने से छुप सकी है। जैसे आग की जरासी चिनगारी भी रुई के ढेर में नहीं छुप सकती वैसे ही उदय सिंह भी छुप नहीं सके। धीरे धीरे उदय सिंह प्रगट होने लगे सभी को पता लगा कि संग्राम सिंह के वंशधर जीते जागते हैं। उदय सिंह का पता पातेही कमलमीर में अनेक राजपूत इकट्ठा होने लगे। मेवाड़ के बहुत से सरदार कमलमीर में इकट्ठे हुये, स्वनाम धन्य आशासा उदयसिंह को सरदारों के हाथ में देकर निश्चिन्त हुए। सरदार गण कमलमीर दुर्ग में उदयसिंह के राजटीका लगाकर, अत्याचारी वनवीर को बाप्पारावल के राजसिंहासन से हटाने की तैयारी करने लगे दुःख सुख सभी बातों का अन्त होता है. वनवीर के अत्याचारों की सीमा समाप्त हो चुकी थी। सरदारों के भय से * वनवीर मेवाड़ छोड़कर दक्षिण की ओर भाग गया सन् १५४२ में बाप्पारावल की राजधानी चित्तौड़ पर उदयसिंह का अधिकार हुआ। यही उदयसिंह—हमारे चरित्र नायक प्रतापसिंह के पिता हैं, इनके समय में मेवाड़ का गौरव कहां तक घटा या बढ़ा, इस विषय में अगले परिच्छेदों को पढ़िये।

* कोई कोई इतिहास लेखक कहते हैं कि नागपुर और बरार के भोंसले राजा—इसी बनवीर के वंशज हैं—लेखक।

द्वितीय परिच्छेद

जन्म और मेवाड़ की परिस्थिति

बालस्यापि रवेः पादाः पतन्त्युपरि भूभृताम्

अर्थः—नवोदित सूर्य की किरणें भी पहाड़ों के सिरों पर ही पड़ती हैं।

विधाता की कुछ उलटी गति है। प्रायः देखा गया है। कि कपूत के सपूत और सपूत के कपूत होते रहते हैं, कीच में जिसको छूने को जी भी नहीं चाहता है। सुन्दर कमल उत्पन्न होता है जिसको देखते ही नेत्र प्रसन्न हो जाता है। और जिस प्रदीप से अन्धकार दूर होता है उस प्रदीप से भी भला क्या उत्पन्न होता है, काला काजल जिसको छूने को जी नहीं चाहता। जिसको छूते ही हाथों में कालोंच लग जाती है तभी कहना पड़ता है कि विधि की कुछ उलटी गति है। विधि की इस उलटी गति ने मेवाड़ के इतिहास में भी अपना ऐसा ही परिचय दिया है। राणा सांगा के उदयसिंह ऐसे पुत्र हुये जो मेवाड़ के राजसिंहासन के योग्य न थे। फिर उदयसिंह के प्रतापसिंह जैसे पुत्र हुए जिनको आज भी मेवाड़ का ध्रुव तारा कहा जाता है तभी तो कहना पड़ता कि विधि के विधान को कौन रोकसकता है उसकी गति प्रबल है।

महाराणा प्रतापसिंह कहा करते थे कि यदि मेरे और

दादा जी राणा सांगा के बीच में और कोई न होता तो मेवाड़ की ऐसी अधोगति कभी न होती। मेवाड़ के चित्तौड़ दुर्ग पर कभी विदेशियों की ध्वजा पताका न फहराती वास्तव में महाराणा प्रताप सिंह का कथन ठीक ही था।

उदयसिंह—बारह वर्ष की अवस्था में गद्दी पर बैठे। जिन राजपूत सरदारों ने कमलमीर में उदयसिंह के कपाल में राजटीका किया था उनमें झालोर के सरदार शोणिगुरु मुख्य थे। शोणि गुरु का वंश सदैव से अपने वीर व्रत पालन करने के लिये विख्यात है। उन्होंने उदयसिंह के साथ अपनी लड़की का विवाह करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। सब सरदारों ने मुक्त कण्ठ से उस प्रस्ताव को स्वीकार किया। अतएव उस प्रस्ताव के अनुसार शुभ मुहूर्त में शोणिगुरु की पुत्री के साथ कमलमीर में उदयसिंह का विवाह हुआ। अतएव विवाह के वर्ष पीछे उस शोणिवंशीय महीप की पुत्री के एक पुत्र रत्न उत्पन्न हुआ। उस समय यह कौन जानता था कि एक दिन यह पुत्र रत्न महाराणा प्रतापसिंह के नाम से मेवाड़ और राजपूत जाति का ही नहीं बल्कि समस्त भारतवर्ष का मुखोज्वल करेगा।

शुक्ल पक्ष की द्वितीया के समान बालक प्रताप की दिन दूनी और रात चौगुनी कान्ति और तेजस्विता बढ़ने लगी। यों तो महाराणा उदयसिंह के चौबीस लड़के थे। परन्तु प्रताप और उनसे छोटे लड़के शक्तसिंह साथ ही साथ खेलते कूदते थे। दोनों भाइयों में आपस में लड़कपन में ही विरोध भाव होने लगा। बात बात में विद्वेश भाव फैलने लगा जिसका बड़ा भयङ्कर परिणाम हुआ। परस्पर की विद्वेषाग्नि ने आगे

जलकर मेवाड़ की स्वाधीनता को फूकना चाहा था। प्रायः बचपन में कोमल हृदय पर जो संस्कार जम जाते हैं वे बड़े पन में भी दूर नहीं होते हैं। कौन नहीं जानता कि कौरव पाण्डवों की बाल्यावस्था की विद्वेषाग्नि ने ही महाभारत का महासंग्राम मचवाया था। कौन नहीं जानता कि भीम और दुर्योधन की बचपन की लाग डाटने कुरुक्षेत्र में कुहराम मचा दिया था। कौन नहीं जानता कि कर्ण और अर्जुन के लड़कपन के द्वेष भाव ने महाभारत की महासमराग्नि में घी की आहुती छोड़ने का काम किया था। उसी विद्वेषाग्नि से प्रताप और शक्त का हृदय एक दूसरे के प्रति जल रहा था जिस के विषय में हम आगे लिखेंगे। परन्तु उस समय का भारतवर्ष आज कलका सा भारतवर्ष न था उस समय भारत वर्ष से क्षत्रियत्व मिट नहीं गया था। आज कल की भाँति, मेज पर रक्खे हुये चाकू से क्षत्रिय डरते नहीं थे। आज कल की भांति उस समय कर्मयोगियों का कर्मयोग प्लेटफ़ार्म पर वक्तृता झाड़ने अथवा अख़बारों में लेख लिखने में ही समाप्त नहीं होता था। और बहुत हुआ तो किसी सभा सोसाइटी का संगठन कर लेना ही क्रियाशीलता की सीमा नहीं थी। उस समय की शूर वीरता केवल गले के फाड़ने अथवा लेखनी के घिसने में ही समाप्त नहीं होती थी। उस समय सच्चे वीरों का खेल तलवार। था बालक प्रताप और शक्त भी तलवार से ही खेल खेलते थे। उस समय के इतिहास की यहां पर एक साधारण सी घटना उद्धृत करनी है जो असाधारण प्रतीत होगी। जिसको सुनते ही इस समय प्राण थर्रा उठते हैं। घटना यह है कि एक दिन एक तलवार नयी बनकर आई थी प्रताप

और शक्त के पिता एक मोटी रस्सी मंगाकर उसकी धार की परीक्षा करने के लिये कह रहे थे पर पांच वर्ष के बालक शक्तसिंह से यह न देखागया कि मोटी रस्सी पर तलवार की धार की जांच की जाय। बालक शक्त सोचने लगा कि जो तलवार युद्ध क्षेत्र में अगणित नरमुण्डों के तन से जुदा करने के लिये मंगाया गई है क्या उसकी जांच कच्चे सूत के धागे पर की जायगी? बस हृदय में यह विचार उठते ही बालक शक्तसिंह ने उस तलवार का अपनी उङ्गली पर आघात किया। तलवार के आघात से बालक शक्त का उङ्गली में से रक्त का फ़वारा छूटने लगा। पर बालक के मुख पर नाममात्र को भी शोक का लक्षण प्रतीत नहीं हुआ वह प्रसन्न मुख हर्षोत्पन्न नेत्रों से रक्त की धार देखने लगा। ऐसी भारी चोट के लगने पर भी उसकी आंखों में से आंसू की एक बूंद भी नहीं टपकी। पास में खड़े हुये सभी लोग चकित और स्तम्भित होकर बालक के मुख की ओर देखने लगे। अरे! यह क्या पांच वर्ष का बालक और यह दारुण साहस!!! परन्तु महाराणा उदयसिंह को बालक शक्तसिंह के इस साहस पर अत्यन्त क्रोध हुआ। उन्हों ने क्रोधित होकर आज्ञा दी कि इस कुलकलङ्क बालक का सिर अभी तन से जुदा कर दिया जाय परन्तु पास में खड़ेहुये सरदारों ने जैसे तैसे समझा बुझा कर महाराणा उदय सिंह जी का क्रोध शान्त किया। परन्तु उदय सिंह जी की भविष्य वाणी सत्य हुई, प्रतापसिंह जैसे मेवाड़ के नहीं नहीं भारत के मुखोज्वलकारी हुए, वैसे ही शक्तसिंह मेवाड़ के कुल कलङ्क देशद्रोही और जातिद्रोही हुए। कोई कोई इतिहास लेखक यह भी कहते हैं कि शक्त सिंह का जन्म पत्री से यह

निर्धारित हुआ था कि यह मेवाड़ के लिये कलङ्क स्वरूप होंगे, इसी से उदय सिंह उन से विरक्त रहते थे। इसी कारण ही उन्होंने शक्तसिंह के सिर उतारने की उस समय आज्ञा की थी। जो कुछ हो उस समय शक्तसिंह के जीवन की रक्षा हुई।

जिस समय प्रताप और शक्त दोनों राज कुमार इस तरह से आमोद प्रमोद में जीवन व्यतीत कर रहे थे, उस समय देखना चाहिये कि मेवाड़ की क्या दशा थी? आइये! पाठक!! आइये!!! उस समय बप्पा रावल की गद्दी पर राणा उदयसिंह जी विराजमान थे, पर उदयसिंह जी में मेवाड़ के राणा होने योग्य कोई गुण न थे। वे वीर धर्म को भूल कर विलासिता में फंसे हुए थे। वे एक वेश्या के प्रेम में फंसकर अपनी वंश परम्परागत मर्यादा को लात मार चुके थे। उनको अपने राज्य की सुध बुध कुछ भी नहीं रही थी।

इतिहास के पाठकों से यह अविदित नहीं है कि राणासांगा की मृत्यु के थोड़े दिन पीछे ही उनका प्रतिद्वन्दी बाबर भी इस लोक से चल बसा था। बाबर के उत्तराधिकारी हुमायूं को शेरशाह के कारण अपनी सल्तनत तक से हाथ धोना पड़ा था। बड़े बड़े सङ्कटों का सामना करके हुमायूं ने अपना खोया हुआ राज्य पाया था। उस समय राणा सांगा के समान कोई चतुर वीर मेवाड़ की गद्दी पर होता तो समस्त भारत वर्ष में अपना अखण्ड राज्य स्थापित कर लेता परन्तु मेवाड़ क्या समस्त राजपूताना नहीं नहीं समस्त भारत वर्ष में उस समय ऐसा कोई दूरदर्शी मनुष्य नहीं रहा था। इसीसे मुगलों की उन्नति का मार्ग परिष्कृत

होगया था। हुमायूं के पीछे अकबर भी १२ वर्ष में हीं अपने बाप के राजसिंहासन पर बैठा। यदि अकबर और उदयसिंह की पारस्परिक तुलना की जाय तो बहुतसी बातों में समता मिलेगी। अकबरने भी बाल पन में उदय सिंह जी के समान अनेक सङ्कटों का सामना किया था। अनेक विपदों में फंसा था, परन्तु सङ्कट और यन्त्रणाओं से उसका हृदय मज़बूत होगया। उसने अनेक आपत्तियों और क्लेशों में पड़कर धीरता और सहिष्णुता का पाठ पढ़ा था। इधर उदय सिंह जी विलासता प्रिय होगये थे, इसलिये अकबर अपने बाप के राज्य को बढ़ाने वाला हुआ और उदय सिंह मेवाड़ को डुबोने वाले हुए।

जिस समय हुमायूं विपत्ति का मारा मेवाड़ में पहुंचा वहाँ आश्रय चाहा तो मेवाड़ के राजा मल्लदेव ने उसको आश्रय देना तो दूर रहा उसको उलटा गिरफ़ार करना चाहा था। इसका कारण यह कहा जाता है कि मुगलोंके एक युद्ध में मल्लदेव का ज्येष्ठ पुत्र राममल मारा गया था। मल्लदेव ने इस अवसर पर हुमायूं से वह बदला चुकाना चाहा था। हुमायूं उस समय मल्लदेव के हाथ न आया, परन्तु साथ ही वह उस समय की अपने अपमान की बात भूला नहीं। दूसरी बार राज्य प्राप्त करने पर हुमायूं थोड़े दिन के पीछे ही इस संसार से चल बसा था सो वह स्वयं तो मल्लदेव से बदला ले नहीं सका पर उसके बेटे अकबरने बदला लेने की ठानी। अकबर की मा ने उसको और भी मल्लदेव से बदला लेने के लिये उत्साहित किया। अकबर अपने बाप का अपमान भूलने वाला न था बस अपनी सेना लेकर मेवाड़ पर चढ़ दौड़ा।

अजमेर में उसने अपनी सेना का पड़ाव डाला। उसने सन् १५६२ में मोरता किले पर अधिकार कर लिया। सबसे पहले जयपुर के महाराज बिहारीमल और उनके पुत्र भगवानदास ने अकबर की दासता स्वीकार करके पवित्र राजपूत कुल में कलङ्क लगाया था। केवल अकबर की अधीनता स्वीकार करके जयपुर नरेश बिहारी लाल चुप नहीं हुए थे। किन्तु * उन्होंने अपनी एक कन्या का विवाह भी अकबर से करदिया था इस भांति बिहारीलाल ने राजपूताने का गौरव धूल मट्टी में मिला दिया। वश्यता स्वीकार करने और लड़की देने के कारण बिहारी

* हिन्दू नरेशों ने अपने यहां की लड़कियां मुसलमान बादशाह को क्यों देदीं और उनकी लड़कियों को अपने यहां क्या नहीं लिया इस विषयको लेकर बहुतसे हिन्दुओं के पक्षपाती और विपक्षी लेखकों ने टिप्पणियां बढ़ाई हैं। किसी विज्ञ बुद्धिमान ने यह भी अटकल लगाया है कि मुसलमान बादशाहों के डरके कारण हिन्दू राजाओं ने खुशी से अपनी लड़कियां देदीं थीं। परन्तु नहीं मेरी समझ में इसका कारण यह प्रतीत होता है कि हिन्दुओं ने समझा कि मुसलमानों की लड़की अपने यहां आने से धर्म भ्रष्ट होगा। छूतछात का उस समय भारत वर्ष में बहुत प्रचार हो चला था। हिन्दू राजाओं ने समझा कि मुसलमानों की लड़कियां अपने यहां आने से सब एकाकमयी होजायगी, इसलिये अपनी लड़कियां देकर बचा डाली। इसके अतिरिक्त एक प्रश्न यह भी है कि क्या मालूम राज महिषियां ही बादशाही घराने में गईं थीं किंवा खवासिनी दासी की पुत्रियां राजमहिषी की पुत्री कह कर ब्याह दी हों। अस्तु जो कुछ हो जयपुर, जोधपुरादि हिन्दू नरेशों का यह काम निन्दनीय हुआ इसमें सन्देह नहीं जब तक इतिहास है यह कलङ्क दूर नहीं हो सकता। बूंदीके हाड़ाओं ने भी मेवाड़ के राणाओं के समान अपनी लड़की कभी बादशाहों को नहीं ब्याही। उन्होंने अकबर से यह सन्धि कर ली थी कि हम बादशाह को कभी डोला नहीं देंगे —लेखक।

लाल के पुत्र * भगवानदास और भगवानदास के दत्तक पुत्र मानसिंहने अकबर के राज्य में उच्च पद प्राप्त किये। अस्तु पहली बार राजधानी में विप्लव मचने से अकबर मेवाड़ को बिना हस्तगत किये ही लौट आया। परन्तु वह चुप होनेवाला नहीं था धीरे धीरे अपनी शक्ति पुष्ट करके पांच वर्ष पीछे उसने मेवाड़ पर फिर चढ़ाई की इसबार उसको सफलता भी प्राप्त हुई। जोधपुर, बीकानेर आदि राज्यों ने अकबर की अधीनता स्वीकार की इतना ही नहीं जोधपुर के मल्लदेव के लड़के उदय सिंह ने अपनी † जोधबाई का अकबर से विवाह कर दिया। मालवा के राजा ने मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह के यहां आश्रय लिया, इसलिये अकबर की दृष्टि चित्तौड़ पर पड़ी।

चित्तौड़ भूमि जैसी वीरों की खान है, वैसे ही प्रकृति

*—भगवानदास की बेटी अकबर के बेटे-सलीम को जो पीछे जहांगीर के नाम से बादशाह हुआ, ब्याही थी। कहते हैं, अकबर खुद बारात लेकर भगवानदासके मकान पर गया था और वहां हिन्दुओं की रीति के अनुसार चारों ओर अग्नि के फेरे पाड़े तब विवाह किया। सलीम की यह अर्थात् भगवानदास की बेटी के डोले पर अशरफियां लुटाता आया। भगवानदास ने सौ हाथी, कई तबले घोड़े, बहुतेरे लौंडी गुलाम सोने चांदी के जवाहिर के असबाब, हथियार बर्तन दहेज में दिये। अमीरों को जो बराती थे, इराकी, तुर्की ताजी सोने रुपे के साज़ समेत घोड़े दिये। पाठकोंने इस विवाह के हाल को पढ़ कर समझ लिया होगा कि अकबर कितना चालाक और कुटिल नीतिज्ञ था वह समझ गया था कि जब तक हिन्दू राजाओं से मेल नहीं किया जायगा, तब तक भारत वर्ष में मुगलों का राज्य नहीं जमेगा इसीलिये वह यह सब चलाकी चलता था। लेखक

†जोधाबाई के गर्भ से ही अकबर के ज्येष्ठ पुत्र सलीम का जन्म हुआ

की लीला निकेतन है। चित्तौड़ एक प्राचीन नगर है छोटीसी बनास नदी के किनारे पहाड़ पर बसा हुआ है। चीन की दीवाल से बढ़कर इसके चारों ओर दुर्भेद्य प्राचीर है। आज कल भी चित्तौड़ की शोभा देखने योग्य होती है। शहर पनाह की दीवाल भी चारों ओर पर्वत के समान दिखायी पड़ती है। प्रधान द्वार "सुरजपोल" या सूर्य्य तोरण है। इस तोरण की रक्षा का भार मालुम्ब्र दुर्गेश्वर चन्द्रावत सरदार पर था। अकबर ने चित्तौड़ पर प्रथम बार आक्रमण किया तो वह सफल मनोरथ न हो सका। क्योंकि बादशाह अकबर की उदय सिंह जी की प्रियपात्रिणी स्त्री के सामने दाल नहीं गल सकी। वह स्त्री क्षत्रियवीरों को साथ लेकर बादशाह की छावनी तक ही नहीं किन्तु बादशाह के तम्बू तक आक्रमण करती हुई चलीगई। राजपूतों की मार के सामने मुसलमान ठहर न सके। राणा उदयसिंह ने इस विजय का यश स्त्री को ही देना चाहा, इसपर राजपूत सर्दारोंने क्रोधित हो कर उस स्त्री का ही मारडाला। हमारे देश में घर की फूट से बाहर के शत्रुओं ने बड़ा लाभ उठाया है। अकबर ने भी घर की अनबन से लाभ उठाने का सहज उपाय सोचा। उसने राजपूतों के घर की अनबन सुनते ही चित्तौड़ पर सम्वत् १६२० (सन् १५६८) में फिर धावा किया। इस बार अकबर अपने साथ बहुत सी फौज लेकर आया। और चित्तौड़ को घेर लिया। किसी किसी इतिहास लेखक का कथन है कि अकबर की सेना इतनी थी कि दस दस मील तक लम्बी उसकी छावनी पड़ी हुई थी। राणा उदयसिंह ने इस समय बड़ी कायरता दिखलायी, वह चित्तौड़गढ़ छोड़ कर भागा

पर राजपूत वीर कायर नहीं थे। उनकी विलास प्रिय महाराणा की ओर लाख अभक्ति हो, परन्तु चित्तौड़ की ओर उनकी दृढ़ भक्ति थी। चित्तौड़ उनको अपने प्राणों से भी प्यारा था। चित्तौड़ के गौरव में प्रत्येक राजपूत अपना गौरव समझता था। चित्तौड़ की अप्रतिष्ठा होना प्रत्येक राजपूत अपनी अप्रतिष्ठा समझता था। अतएव महाराणा के भाग जाने पर अनेक राजपूत—"एक लिङ्गेश्वर की जय" "बाप्पारावल की जय" आदि आकाश गुंजानेवाली ध्वनि करते हुए चित्तौडगढ़ की रक्षा के लिये एकत्रित हुए! अगणित राजपूत वीर सूर्य तोरण की रक्षा के लिये आये। बदनोर के जयमल राठौर और केलवा के पत्ता, जो, (पुत्त, या पत्तू भी कहते हैं) आये जयमल राठौर मेड़ता के राव थे, परन्तु घरेलू झगड़े के कारण उदय सिंह उनको उदयपुर ले आये थे। जयमल और पत्ता का नाम आज भी इतनी शताब्दियों के बीत जाने पर राजस्थान के बालक, बूढ़े सभी बड़े आदर के साथ लेते हैं।

वास्तव में इस युद्ध में मेवाड़ के वीरों ने अपनी स्वाधीनता, और चित्तौड़ के किले के गौरव की रक्षा के लिये अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी। इस युद्ध में वहां की सुकोमल अबलाओं ने भी अपने अपूर्व साहस से बादशाह अकबर तक के दांत खट्टे कर दिये थे। जिस समय सूर्य तोरण के पास सलूंवर के राव मारे गये तब राजपूत सेना की सरदारी केलवा के पत्ता जी को सौंपी गयी। पत्ता जी की अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी। उनके पिता इससे पहले एक युद्ध में मारे गये थे। अपने माता पिता के इकलौते

पुत्र थे। परन्तु जिस समय उनको सेना का भार सौंपा गया था तब उनकी माता तनिक भी विचलित नहीं हुई। पहले समय में राजपूत माताएं देश और धर्म के लिये मरना अपना सौभाग्य समझती थीं। भारतवर्ष का वह समय ऐसा ही था कि जब राजपूत माता अपने पुत्र को युद्धस्थल में विदा करते समय यह उत्साह पूर्ण वचन कहती थीं कि जाओ! बेटा!! जाओ!!! जीते रहोगे तो स्वाधीनता भोगोगे और मर गये तो सीधे स्वर्ग को जाओगे"। राजपूत माताओं के अपनी सन्तानों के प्रति देश और धर्म की रक्षा के लिये ऐसे उत्तेजना पूर्ण शब्द होते थे। पत्ता जी की माता भी उन राजपूत रमणियों में से थी अपने देश और धर्म की रक्षा के लिये सर्वस्व न्योछावर करने को तय्यार रहती थीं। उन्होंने अपने प्यारे पुत्र का वीरधर्म पालन करने के लिये सहर्ष आज्ञा दी थी। केवल इतना ही नहीं वह वीरबाला अपनी पुत्री और पुत्र वधू पत्ता जी की स्त्री को साथ लेकर स्वयं बादशाह अकबर के मुकाबिले के लिये युद्धस्थल में आई। सुनते हैं जिस समय बादशाही सेना चित्तौड़ के निकट पहुंचने लगी, उस समय इन तीनों अबलाओं ने अपने अचूक निशानों से मुगल सेना के धुरें उड़ा दिये थे। बादशाह अकबर उक्त तीनों वीराङ्गनाओं की बहादुरी पर इतने प्रसन्न हुये थे कि उन्होंने आज्ञा की थी कि जो कोई वीर इन तीनों वीराङ्गनाओं को पकड़ कर लावेगा वह मुह मांगा इनाम पावेगा। परन्तु उस हुल्लड़ में कौन सुनता था। एक एक करके तीनों वीर रमणियां भूतल-शायी हुई और इस लोक में अपनी अनन्त और अक्षय कीर्त्ति छोड़ गई। तीनों वीराङ्गनाओं की वीरता देखकर चित्तौड़ के

वीर और भी दूने उत्साह से शत्रुओं का मुक़ाबला करने लगे।

अगणित शत्रुओं के सामने मुट्ठी भर राजपूत कब तक लड़ सकते थे, आखिर प्रचण्ड अग्नि के समान अपनी तेजस्विता दिखला कर धीरे धीरे भूतलशायी होने लगे। सोलह वर्ष के बालक अभिमन्यु ने महाभारत के महा संग्राम में कौरवों के चक्र व्यूह में अनुपम वीरता का परिचय दे अपने वैरियों के कलेजे दहला दिये थे। वीर वर अभिमन्यु के समान ही पत्ता जी ने अपने साहस और पराक्रम से मुसलमानी सेना के बड़े बड़े वीरों के हृदय कंपा दिये थे। जिस तरह से प्रचण्ड आंधी बड़े बड़े पेड़ों को उखाड़ कर थम जाती है। उसी तरह से महावीर पत्ता जी अपनी तलवार से मुग़ल सेना के अनेक बहादुरों के सिर गाजर मूली की भांति काट कर अन्त में मारे गये। पर राजपूत वीरों ने अपना साहस नहीं छोड़ा "कार्यं वा साधयेम् शरीरं वा पातेयम्" मृत्यु का देखना अथवा कार्य का साधना जिस सिद्धान्त को ग्रहण कर के लड़ने लगे जयमल राठौर ने दुर्ग की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। इस भीषण संग्राम में हमारे चरित नायक भारत के पुण्यश्लोक महाराणा प्रतापसिंह ने जयमल राठौर की अधीनता में अपूर्व साहस और वीरता से युद्ध किया था जिससे राजपूत गण उनके पिता का कुत्सित व्यवहार भूल गये।

इस युद्ध की आदि से अन्त तक आलोचना करते हुये कहना पड़ेगा कि चित्तौड़ से भाग्य विधाता रूठा था यदि ऐसा न होता तो क्या मेवाड़ का पतन होता। वीर जयमल ने भी अपनी वीरता में कसर नहीं की अपने जीतेजी चित्तौड़ का किला

दुश्मन के हाथ में नहीं लगने दिया। पर होनी को कौन टाल सकता था? एक दिन रात को जयमल मशाल के उजाले से दुर्ग की बुर्जों की मरम्मत करा रहे थे कि अकबर ने जो किला घेरे पड़ा था, उन्हें पहचान लिया, ताक कर ऐसा निशाना मारा कि जयमल उसी जगह लोट गये। दूरदर्शी जयमल ने देखा कि अब मेरा अन्तिम समय है, बच नहीं सकता हूं, काल के गाल में जारहा हूं और अब चित्तौड़ भी वैरी के हाथ से बच नहीं सकता है। तब उन्होंने बचे हुए अपने आठ सहस्र योद्धाओं को केसरिया बाना पहनने और द्वार खोलने की आज्ञा दी। आज्ञा दी कि किले का दरवाजा खुलतेही राजपूतगण बादशाही सेना पर टूट पड़े और सेना लड़कर वीरगति को प्राप्त हुई॥ * नौ रानियां, पांच राजकुमारियां, दो छोटे राजकुमार और बहुत से सरदारों की सब स्त्रियां, उस समय जब राजपूत लोग केसरिया बाना पहन, किले का फाटक खोलकर बाहर निकले थे, अग्नि में जलकर भस्म होगईं। चित्तौड़ गढ़ में यह तीसरा शाका हुआ।

यह युद्ध कैसा भयानक हुआ होगा, उसका केवल टाड साहब के कथन सेही पता लग सकता है कि जब मरे हुए वीरों के यज्ञोपवीत तोले गये, तब तौल में ७४॥ (साढ़े चौहत्तर) मन हुए। किसी किसी का अनुमान है कि उस समय मन चार सेर का होता था। खैर चार सेरका ही सही।

* सरदारों के अनुरोध से चित्तौड़ के पतन के पूर्वही प्रताप सिंह तथा कुछ आदमी युद्धक्षेत्र से उदयपुर चले गये थे। यदि प्रताप सिंह उस समय उदयपुर न जाते तो राजस्थान का कमल खिलने से पहिले ही मुरझा जाता। —लेखक

पर एक जनेऊ एक तोले का भी रक्खा जाये तो लगभग पच्चीस हजार से अधिक आदमी इस युद्ध में काल के गाल में गये। इस घटना को सदैव स्मरण रखने के लिये अकबर की आज्ञा से ७४॥ चिट्ठियों के लिफ़ाफे पर लिखा जाने लगा। इसका तात्पर्य यही है कि जो कोई किसी दूसरे की चिट्ठी पढ़ेगा उसको चित्तौरध्वंस का पाप लगेगा। भारत के प्रान्तों में थोड़ी बहुत अभी तक यह प्रथा जारी है।

अकबर की चिर अभिलाषा पूर्ण हुई, चित्तौड़ गढ़ उसके हस्तगत हुआ। पर उस समय चित्तौड़ में रक्खाही क्या था? चित्तौड नगरी स्मशान पुरी बनी हुई थी, जनशून्य थी। बादशाह अकबर ने ऐसे जनशून्य स्मशान चित्तौड़ नगरी पर अधिकार प्राप्त किया। चाहे चित्तौड़ स्मशान पुरी हो चाहे जनशून्य नगरी हो पर * बादशाह की बहुत दिनों की लालसा

* पञ्जाब के प्रसिद्ध विद्वान, डाक्टर गोकुलचन्द्र एम० ए० पी० एच० डी० के " The Transformation of Sikhism " नामक पुस्तक से ज्ञात होता है कि अकबर—चित्तौड़ दुर्ग को जीतने के लिये इतना उत्सुक था, कि उसने सरहिन्द के भगवानदास खत्री नामक अपने एक विश्वासपात्र कर्मचारी को सिक्खों के गुरु अङ्गद के पास यह प्रार्थना करने के लिये भेजा कि चित्तौड गढ़ अकबर के हस्तगत हो। गुरु उस समय बावली बनवाने में लगे हुये थे, उन्होंने कहाः—'ज्योंही कुंएं का चक्र अपने स्थान पर बैठ जायगा, त्योंही चित्तौडगढ़ विजय होजावेगा"। शायद गुरु चित्तौड़ के इतिहास को नहीं जानते थे, तबही उन्होंने ऐसी बात कही थी। इसमें सन्देह नहीं कि अकबर एक दूरदर्शी और बुद्धिमान बादशाह था तथापि वह कतिपय मूढ़ विश्वासों से नहीं बचा हुआ था। यद्यपि वह अपने सिर लुई ११ वें के समान अपनी टोपी में समस्त ईसाई सेण्टों की तसवीरें लेकर। न चलता था, परन्तु इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि वह आपत्ति के

चित्तौड़ गढ़ को हस्तगत करने की पूर्ण हुई।

जिस अकबर की प्रशंसा में इतिहासकारों ने आकाश या पाताल के पुल बांध दिये हैं। उस अकबर ने चित्तौड़ पर विजय प्राप्त करके अपने पाषाण हृदय और नृशंस स्वभाव का परिचय दिया। उसने चित्तौड़ नगरी पर बड़े बड़े अत्याचार किये। नराधम, पापी अलाउद्दीन खिलजी और मालवा के बादशाह बहादुर के हाथ से जो राजकीय चिन्ह बच गये उन सबको मटिया मेट अकबर ने किया। देवालय और मन्दिरों के कलश और शिखर यवनों के पैर तले रौंदे गये। चित्तौड़ की सुन्दर अट्टालिकाएं और पवित्र मन्दिर गिराकर ज़मीन के बराबर किये गये। जिन नगाड़ों की ध्वनि कोसों तक पहुंचकर गिहलोत नरेशों की महिमा प्रगट करती थी, जिनकी ध्वनि से मेवाड़ के वैरियों का कलेजा धड़कता था। जो बहुमूल्य दीपवृक्ष अपने विमल प्रकाश से भगवती चतुर्भुजा के मन्दिर की शोभा बढ़ाते थे और जिन सुन्दर किवाड़ों से चित्तौड़ के बड़े बड़े द्वार चमक दमक रहे थे। उन सब को अकबर अपने नवीन नगर अकबराबाद को सजाने के लिये

समय में सहायता की याचना के लिये साधुओं तथा पवित्र मन्दिरों तक पहुंचा करता था। यह होसकता है कि उसने ज्वालामुखी के मन्दिर की हिन्दुओं को प्रसन्न करने तथा अपनी ओर मिलाने के लिये मरम्मत की हो, परन्तु यह बात असन्दिग्ध है कि दरवेशों तथा दरगाहों में यह समयोपयोगी राजनीति के कारणही श्रद्धा नहीं दिखलाया करता था। देखो तवारीख़ फ़रिश्ता का ४६०, पेज, जिससे, ज्ञात होता है कि वह अनेकबार निज़ामुद्दीन औलिया तथा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाहों तक पैदल यात्रा करके गया था।

ले गया था। परन्तु इस तरह से राजकीय चिन्हों का मटिया मेट करने पर भी अकबर जयमल और पत्ता की वीरता को नहीं भूला। उसने दिल्ली में अपने राजमहल के सामने जयमल और पत्ता की हाथी पर चढ़ी हुई पत्थर की दो मूर्तियां बना रखीं थीं। ठीक ही सच्चे शूरमा की कौन प्रशंसा नहीं करता है। सच्चे शूरवीर के सामने उसके शत्रुओं को भी अपना मस्तक झुकाना पड़ता है।

आइये ! पाठक !! आइये !!! अकबर की करतूत तो देख चुके अब उदय सिंह जी की भी सुध लेनी चाहिये। जब अकबर चित्तौड़ गढ़ घेरे पड़े हुये थे, दोनों ओर से रण-चण्डी का लास्य नृत्य हो रहा था। तब उदय सिंह ने देखा कि अभी युद्ध की समाप्ति नहीं है न मालूम अभी कितने दिन और युद्ध हो। यह विचार कर उन्होंने चित्तौड़ छोड़ दिया, पहले उन्होंने राजाधिपाल नामक स्थान में गोहिलों के यहां आश्रय लिया। फिर और भी दक्षिण अरवली पर्वत श्रेणी के मध्य में बढ़े। वहां उन्होंने कई वर्ष पहले एक सरोवर और सुन्दर भवन बनाया था। उस सरोवर का नाम पड़ा था—उदय सागर और उस महल का नाम नचौकी। उस जगह जाकर उदयसिंह ने आश्रय लिया था—इसी लिये यह स्थान समस्त मेवाड़ की राजधानी हुआ, पीछे उसका नाम उदयपुर पड़ा।

उपर्युक्त घटना अर्थात् चित्तौड़ पतन के पीछे उदय सिंह जी चार वर्ष और जिये। चित्तौड़ में उनका राजत्व था, राजसम्मान था, राजवैभव था, पर यह सब कुछ होने पर भी राजगौरव न था। वीर केसरी प्रताप सिंह उदयपुर में न रह

कर कमलमीर में रहना पसन्द करते थे। उदयसिंह जी का प्रताप सिंह की ओर स्नेह भी न था। संसार भी कैसी अद्भुत घटनाओं से भरा हुआ है, प्रायः इतिहास में देखने में आया है कि जिन राजकुमारों को उनके पिता राजाओं ने स्नेह की दृष्टि से नहीं देखा है, उन्हें समस्त संसार ने आदर और स्नेह की दृष्टि से अपनाया है। कौन नहीं जानता कि प्रह्लाद को उसके बाप राजा, हिरण्यकश्यप ने क्या क्या यन्त्रणायें पहुंचाने की चेष्टायें नहीं की थी। पर आज प्रह्लाद के नाम पर संसार मोहित है। ध्रुव जी के पिता ने उनको कब आदर की दृष्टि से देखा था, पर आज संसार के बहुत से मनुष्य उनके नाम की माला जपते हैं। शिवाजी महाराज अपने पिता के कब लाड़ले, दुलारे थे? पर अपने पिता के ललकारे दुतकारे शिवाजी महाराष्ट्र देश में से यवनों के राज्य को उखाड़ पछाड़ के हिन्दुओं की ध्वजा पताका फहरा कर संसार में अपना नाम अमर कर गये। यही दशा महाराणा प्रतापसिंह की हुई, जो अपने पिता के स्नेह भाजन न थे, वे ही अपनी अलौकिक वीरता से आज भी समस्त मेवाड़ के नहीं नहीं समस्त भारतवर्ष के पूजनीय देव हो गये हैं। कहिये पाठक! प्रताप अपने किन गुणों से इतना उच्च स्थान प्राप्त कर गये हैं? यदि उन कारणों के ढूंढने की इच्छा हो तो आइये अगले परिच्छेदों में देखें। जिससे पता लगे कि आज भी, इतनी शताब्दियां बीत जाने पर भी प्रताप सिंह क्यों पूजनीय हैं? भारतमाता के एक से एक योग्य पुत्र होने पर भी प्रताप सिंह और गुरु गोविन्द सिंह आदि महापुरुषों के नाम पर आनन्द से हृदय नृत्य क्यों करने लगता है? इस बात को जानते हो न? नहीं जानते हो तो एक बार सोचो। अपने हृदय से इस प्रश्न का उत्तर पूछो कि प्रतापसिंह का नाम मोहित करनेवाला क्यों है?

तीसरा परिच्छेद

राज्य प्राप्ति

"हे कुंवर तुम को राज दै,
सिर अचल छत्र फिराइ है।"
(हरिश्चन्द्र)

सन् १५७२ में गोलकुण्डा नामक स्थान में ४२ वर्ष की अवस्था में मेवाड़ के अधीश्वर महाराणा उदयसिंह का देहान्त हुआ। उस समय मेवाड़ की कैसी दशा थी, सो ऊपर लिखा जा चुका है। वास्तव में उदयसिंह नाम में ही कुछ दोष मालूम होता है। बादशाह अकबर के समय में राजस्थान में दो उदयसिंह हुये, पर दोनों ही कुल कलङ्क हुये। महाराणा उदय सिंह के समय में मेवाड़ का पतन हुआ और मारवाड़ के "मोटे राजा" उदय सिंह ने अकबर की दासता स्वीकार करके और उसको अपनी बहिन जोधाबाई ब्याह करके बादशाह के साले बनने के कलङ्क का टीका अपने मत्थे लगवाया। महाराणा उदयसिंह मरते समय एक और भी राजपूत वंश परम्परा लोकाचार और शास्त्र विरुद्ध कार्य्य कर गये। सदा की उत्तराधिकारी विधि को टाल कर, पुरानी शुद्ध सनातन प्रथा को मेट कर अपनी छोटी प्यारी रानी के कुमार जगमल को उत्तराधिकारी बना गये, उदयसिंहजी के चौबीस लड़के थे। चौबीसों लड़कों में से जगमल सब में छोटे थे और महाराणा प्रतापसिंह सब से बड़े थे। इस विचार से

चित्तौड़ का राजसिंहासन और राजमुकुट प्रतापसिंह का था। परन्तु नहीं, उदय सिंहने इसका कुछ विचार नहीं किया वे अपनी प्यारी छोटी रानी के प्रेमपाश में बंधे रहने के कारण कुल मर्यादा, विवेक बुद्धि, लोकाचार और शास्त्रों के विधान आदि सभी को विसर्जन कर चुके थे। उन्होंने जगमल को उत्तराधिकारी बनाकर अपने पुत्रों में नया झगड़ा खड़ा कर दिया। मेवाड़ में भी यह रीति है कि एक राजा के मरने पर दूसरे को गद्दी हो जाती है। एक ओर तो राजपरिवारके लोग कुलपुरोहितों के साथ शोक मनाते हैं दूसरी ओर प्रजावर्ग अपने मकानों की सफ़ाई करता है, अपने घरों को सजाती है और दूसरा ओर नये राजा का अभिषेक होता है। "King is dead, Long live the King"—अर्थात् "राजा मर गया पर राजा युग युग जिओ" इस कहावत के अनुसार मेवाड़ का राजसिंहासन भी राजा बिना खाली नहीं रहता है। बस इस नियम के अनुसार ही जब उदयसिंह जी का अन्त्येष्टी संस्कार हो रहा था। तब कुमार जगमल गद्दी पर बैठे। जगमल को क्या मालूम था:—"Man Proposes but God disposes" मनुष्य अपने विचारों के पुल बांधता है पर परमेश्वर ढाह देता है। "मेरे मन में और कर्ता के मन और" बेचारे जगमल को क्या ख़बर थी कि इस उपर्युक्त कहावत के अनुसार उसके भाग्य में राज सिंहासन का सुख बदाही नहीं है। जिस समय जगमल राजगद्दी पर बैठ कर अपनो चपलता की सीमा प्रकट कर रहे थे उस समय श्मशान भूमि में कुछ और ही प्रस्ताव हो रहा था।

उदयसिंह चाहे अपनी वंश परम्परा को भूल गये,

चाहे वे लोकाचार और शास्त्र विरुद्ध कार्य कर गये हैं पर राजपूत सरदार वंशपरम्परा की रीति को लोकाचार और धर्म को भूले नहीं थे। राजपूतगण मुसलमानों के समान नहीं थे कि शाहजहां के सच्चे उत्तराधिकारी दारा शिकोह को मारकर उसका छोटा भाई औरङ्गजेब दिल्ली के तख्त ताऊस पर बैठ गया और किसी ने चूं तक नहीं की। राजपूत सरदारों को उदयसिंह जी का यह कार्य पसन्द नहीं आया झालाराधिपति शोणिगुरू सरदार को उदयसिंह जी का यह अनुचित कार्य बहुत ही खटका वह अपने भाञ्जे प्रताप को ही गद्दी पर बिठलाने के लिये व्यग्र थे और मेवाड़ के प्रधान मन्त्री चूड़ावत कृष्णसिंह से पूछने लगे कहिये आप बड़े पुत्र प्रताप के होते हुये छोटे पुत्र जगमल को गद्दी दिलाने के लिये कैसे सहमत होगये, आपके रहते हुये यह कुमन्त्रणा कैसे हुई ? आपके रहते हुये यह कुविचार कैसे हुआ ? आपने इस न्याय विरुद्ध कार्य का क्यों अनुमोदन कर दिया। राव ने झालाराधिपति शोणिगुरु के प्रश्न का हंसकर उत्तर दिया। यदि अन्तिम समय में रोगी को कुपथ्य सेवन की इच्छा हो तो उसे कौन रोक सकता है। यदि अन्तकाल में रोगी दूध मांगे तो उसे देने में हानि ही क्या है ? इतना कहकर राव थोड़ी देर के लिये चुप होगया पीछे कहने लगा कि चित्तौड़ के राजसिंहासन के लिये मैंने आपके भाञ्जे प्रताप को ही चुना है निश्चय मानियेगा कि प्रताप के रहते हुये मैं मेवाड़ का राज मुकुट किसी दूसरे के सिर पर नहीं देख सकूंगा मैं प्रताप के पास ही खड़ा होऊँगा।

इधर यह बात चीत हो ही रही थी, उधर जगमल राणाजी

की गद्दी पर बैठा हुआ था। प्रतापसिंह अपने पिता के व्यवहार से दुःखित होकर घोड़ा कस कर मेवाड़ छोड़ने की तय्यारी कर रहे थे। इस बीच में सरदारों ने प्रतापसिंह को जाने से रोका और ग्वालियर के राजच्युत राजा के साथ रावत कृष्णसिंह जगमलके पास पहुंचे। जगमल ने उनके पदके अनुसार, उन की अभ्यर्थना की, सही पर उन दोनों ने वहां पहुंच कर जगमल की एक एक बांह पकड़ कर नीचे एक आसन पर बिठला दिया और उससे कहा:— कुमार! आपने धोखा खाया है इस गद्दी पर केवल प्रतापसिंह के अतिरिक्त और किसी को बैठने का अधिकार नहीं है। ऐसा कह कर उन्होंने प्रतापसिंह के तलवार बांध दी, सालम्ब्रा अधिकारी ने प्रतापसिंह को राजसी वस्त्र पहनाये और फिर राज सिंहासन पर बिठला दिया। यह सब होचुकने के बाद मेवाड़ की प्रथा के अनुसार ज़मीन तक झुक कर तीन बार प्रणाम किया। चारों ओर से आकाश को गूंजानेवाली ध्वनि महाराणा प्रतापसिंह की जय होने लगी। यह सब कृत्य होते देख कर जगमल चुप होगया, उसने चूं तक नहीं की। परमेश्वर की भी क्या माया है थोड़ी देर पहले जो मेवाड़ के राज-सिंहासन की आशा लगाये हुए था वह ज़मीन पर बैठायागया, जो निराश हो कर अपनी जन्मभूमि को अन्तिम प्रणाम कर रहा था। वह मेवाड़ का अधीश्वर हुआ। अभी तो कवि कहता है कि "रीते भरे ढरकावे महर करें तो फेर भरें"।

—:o:—

चौथा परिच्छेद

अहेरिया का उत्सव

बन्धु यह मलिन वेष तजि डारो।
आलस बन्द तोड़ अब या छन याको बेग उतारो ॥
तम कारन न लखत अबहिं लौं अब ह्वै गयो उजारो ॥बन्धु०॥
फौ फेंट फटो वस्त्र केवल पै हृदय न मलिन तुम्हारो॥
तासे तजि ऊपरी मलिनता यह कलंक को टारो।
बन्धु अब चूकन को समय रह्यो नहिं बैठे काह विचारो॥
"माधव" अवसर गये न मिलि हैं लाख जतन कर हारो।
बन्धु अब मलिन वेष तजि डारो॥ —पं० माधवशुक्ल

वसन्त ऋतु के समय में महाराणा प्रतापसिंह ने मेवाड़ का राज मुकुट अपने मस्तक पर रखा था। उन दिनों अहेरिया का उत्सव निकट था। महाराणा प्रतापसिंह ने आज्ञा दी कि सब लोग शिकार खेलने के लिये जङ्गल में चलें। और भगवती गौरी के सामने वराह-बलि देकर आगामी वर्ष का फल देखें। और आने वाले वर्ष का फलाफल आज के दिन निश्चय करें। सामन्त सरदार महाराणा की इस आज्ञा को शिरोधार्य्य करके अपने घोड़े, हाथियों को सुसज्जित करके जङ्गल में शिकार खेलने के लिये चले। महाराणा भी अपने सामन्त सरदारों के साथ चले। आनन्द में भरे सब शिकार खेलने लगे। सभी उपस्थित जन आखेट के फल पर मेवाड़ के भविष्य शुभाशुभ का विचार करने लगे। महाराणा

भी अपने सरदारों को इस अवसर पर उत्साहित और उत्तेजित करने लगे। अपने सरदारों को बड़े गम्भीर और उत्साह पूर्ण शब्दों में कहने लगे :—सरदार गण! मेवाड़ के वीरो!! स्मरण रखो कि आज वाराह के शिकार पर ही मेवाड़ भाग्य की परीक्षा निर्भर है। मत समझो कि केवल शान्ति समय में षोडशोपचार सहित घन घोर घंटा ध्वनि करके ही भगवती के सामने वाराह की बलि देने से ही कार्य्य सिद्धि होजायगी। माता के सामने वन-सूअरों को बलि देते हो तो भले ही दो, लेकिन अच्छी तरह से याद रखो कि हमारा महाव्रत जो चित्तौड़ को स्वाधीन करने का है वह केवल वन-वाराहों के बलिदान करने से ही नहीं हो सकता है। देखते नहीं हो कि समस्त राजपूताना पापी नराधम मुग़लों से ग्रस्त होरहा है। मेवाड़ की, राजपूताने की, राजपूत जाति की स्वाधीनता हरण हो गई है। माता भगवती की परम पवित्र मूर्ति यवनों द्वारा पदाक्रान्त हुई है। भगवती चतुर्भुजा की मूर्ति यवनों की ठोकरों से टकराई गई है। इस महोत्सव के करने का प्रयोजन यही है कि हम सब राजपूताने से मुग़लों को खदेड़ने की, अपनी प्यारी जन्मभूमि चित्तौड़ को मुग़लों के हाथ से उद्धार करने की अटल प्रतिज्ञा करें। जिस तरह से आज हम वन-वाराहों का शिकार करते हैं, वैसे ही राजपूतजाति के शत्रुओं का शिकार करें। महाराणा के मुखारविन्द से ऐसे उत्साहपूर्ण शब्द सुन कर उपस्थित समस्त सरदार मण्डली ने आकाश गुंजनेवाली यह ध्वनि की कि महाराणा प्रतापसिंह की जय, मेवाड़ाधिपति की जय, भगवान एक लिङ्ग की जय। तदनन्तर सभी लोग

आखेट में प्रवृत्त हुए असंख्य वाराहों का शिकार हुआ उस दिन के आखेट में सफलता प्राप्त कर के समस्त राजपूतों ने समझ लिया कि भविष्य में कुछ अच्छी ही बात होनेवाली है। सब प्रसन्नता पूर्वक आखेट से लौट आये।



पांचवां परिच्छेद

रङ्ग में भङ्ग

*सौहृदेन परित्यक्तं निःस्नेहं खलमुत्सृजेत् ।
सोदर्यं भ्रातरमपि किमुतान्यं पृथग्जनम् ॥

दूजे के हित प्राण दै, करै धर्म प्रतिपाल ।
को ऐसो प्रिय के बिना, दूजो है या काल ॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

हम पहले कह आये हैं कि प्रतापसिंह और शक्तसिंह, दोनों भाई थे। बाल्यावस्था में दोनों का लालन पालन, खेल कूद, शिक्षा दीक्षा, एक ही साथ हुई थी। प्रायः बालकों में एक दूसरे से खेल कूद में वैमनस्य भाव होजाता है वैसे ही बचपन में प्रताप और शक्त दोनों में होगया। धीरे धीरे इस द्वेष भाव ने दोनों भाइयों के ऊपर विशेष रूप से अधिकार प्राप्त कर लिया। आगे चल कर इस द्वेष भाव के कारण दोनों भाई एक दूसरे के शत्रु बन बैठे।

अहेरिया उत्सव के दिन अनेक राजपूत वीरों ने घने जङ्गलों में घुसकर बहुत से बाराहों का शिकार करके अहेरिया उत्सव मनाया। देवी के सामने अनेक बाराहों का बलिदान दिया और महोत्सव से उस वर्ष का फल भी अच्छा प्रतीत हुआ सब की आशाएं महाराणा प्रतापसिंह पर बंधी

* ऐसे दुष्ट सगे भाई का भी त्याग करना चाहिये; जिसने मित्रता छोड़ दी है और जिसके स्नेह नहीं है और की तो बात ही क्या है ? —लेखक

परन्तु हाय ! इस महोत्सव के समय पर ऐसी दुर्घटना होगई जिससे सभी के प्राण थर्रा उठे और चित्तौड़ के शत्रुओं को प्रतापसिंह के वैरियों को वह घटना एक प्रकार से सहायता पहुंचानेवाली हुई। किसी अंश में यह भी कहा जा सकता है कि यह घटना मेवाड़ के इतिहास को ही पलटनेवाली हुई।

अहेर के उत्सव के दिन जिस समय समस्त राजपूत वीर मण्डली चारों ओर वाराहों के शिकार करने में लगी हुई थी सभी लोग प्राणपण से यह चेष्टा कर रहे थे कि वीरता में कौन श्रेष्ठ है अथवा यों कहियेगा कि सभी लोग अपनी अपनी श्रेष्ठता दिखलाने की चेष्टा कर रहे थे। उसी समय यह घटना हुई।

उसी समय दोनों वीर भ्राता प्रतापसिंह और शक्तसिंह में पिछला विद्वेष भाव जागृत हो उठा। दोनों के बीच में भयङ्कर विवाद उपस्थित हुआ। विवाद का कारण यह था कि सभी के हृदय में आखेट करने की लौ लगी हुई थी सभी को अपनी वीरता दिखाने और यश प्राप्त करने की लालसा बढ़ रही थी। किसी को किसी की सुध न रही छोटे बड़े का कुछ भेद भाव नहीं रहा। प्रताप और शक्त दोनों भाई एक साथ ही शिकार के लिये चले उन दोनों के पास ही एक वन वाराह दिखाई दिया। वे दोनों भाई वाराह की ओर लपके बेचारा वाराह भी अपने प्राणों के मोह से कठिन जंजाल से बचकर भगने लगा पर वह भगकर जाना ही कहां ! दो महा पराक्रमी वीरों के बीच से वाराह का बचकर जाना असम्भव था। बस दोनों भाइयों ने एक साथ एक ही समय ठीक एक ही

स्थान पर दो कठिन तीर वाराह की ओर ताक कर छोड़े। एक तीर वाराह के मस्तक को पार कर गया। उस तीर की वेदना को जङ्गली सुअर सम्हाल न सका। वह तीर के आघात से धरती पर लेट गया। हाय! बुरी सायत में इस जङ्गली सुअर का आघात हुआ था। बस इसी लक्ष्य वेध पर दोनों भाइयों में खूब तर्क वितर्क होने लगा। दोनों आपस में इसी बात पर झगड़ने लगे कि मेरे तीर से वाराह मारा गया। अन्त में यह तर्क वितर्क बहुत बढ़ गया। उस समय प्रताप अपने घोड़े को चक्राकार फेर रहे थे। उनके हाथमें शानदार बर्छा चमक रहा था दोनों भाइयों के हृदय की दबी हुई विद्वेषाग्नि भभक उठी दोनों एक दूसरे को ललकार कर द्वन्द्वयुद्ध करने को तय्यार होगये दोनों एक दूसरे को ललकार कर कहने लगे ख़बरदार पीछे मत हटना आओ अभी हम तुम फैसला करें कि किसके तीर से वाराह मारा गया है। बस इस तरह से कहकर एक दूसरे के प्राणों के ग्राहक बन बैठे दोनों भाइयों का आपस में यह झगड़ा देखकर समस्त वीर मण्डली चकित स्तम्भित होगई वह मन्त्र मुग्ध सांप के समान वीर मण्डली चुपचाप दोनों भाइयों की ओर देखने लगी।

चारों ओर सन्नाटा छागया, हाय! अब कौन दोनों भाईयों का झगड़ा मिटावे? कौन दोनों भाईयों के अशान्त महासागर के समान हृदयों को शान्त करे? हाय! अब मेवाड़ का सर्वनाश उपस्थित हुआ। इस तरह से सभी वीरों के हृदय कांपने लगे, सभी अपने अपने इष्ट देवों से इस झगड़े के शान्त होजाने की प्रार्थना करने लगे। पर प्रताप और शक्त अपने अपने संङ्कल्प से विचलित नहीं हुए। वे एक दूसरे

के प्राणों के ग्राहक बने हुए थे। वे अपने विचारों पर अटल पर्वत के समान डटे हुए थे। वे अपनी अपनी धुन में लगे हुए थे। परन्तु जब सारी वीरमण्डली मन्त्रमुग्ध सांप के समान चुपचाप खड़ी हुई थी, जब प्रताप और शक्त भी भावी भले, बुरे का विचार न करके एक दूसरे के प्राणों के के लेने की तय्यारी कर रहे थे तब प्रताप और शक्त की रक्षा के लिये कौन आगे आया ! पाठक ! उसी ब्राह्मण जाति की एक सन्तान, जिसको बाबूलोग इस देश को चौपट करने वाली जाति कहते हैं—अगुआ हुआ यह राज्य कुलपुरोहित ब्राह्मण था। वह प्रताप और शक्त के इस भयानक युद्ध को मिटाने के लिये वीरमण्डली में से अगुआ बना। उसका कोमल हृदय सहन नहीं कर सका कि उसके होते हुए मेवाड़ का सर्व्वनाश हो जाय। वह दोनों भाइयों के बीच में खड़ा होगया और कहने लगा :— हे महाराणाजी ! हे राजकुमार ! शान्त हो, इस व्यर्थ के झगड़े में कुछ नहीं रखा है। पर किसी ने उसकी बात नहीं सुनी, दोनों मस्त हाथी के समान एक दूसरे पर भाला चलाने लगे। इस भयङ्कर दृश्य को देखकर राज पुरोहित ब्राह्मण ने फिर उच्चस्वर से महाराणा प्रतापसिंह को सम्बोधन करके कहा:—"दुहाई, महाराणाजी! अरे भाई ज़रा तो धीरज धरो। थोड़ी देर ठहरो तो सही, मेरी थोड़ीसी विनती तो सुनो" पर महाराणा ने कुलपुरोहित की इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया। कुलपुरोहित ने देखा कि उसकी प्रार्थना का कुछ असर नहीं हुआ, तब उसने शक्तसिंह को सम्बोधन करके कहा :—हे राजकुमार ! जरा ठहर जाओ ! तुम सरीखे वीर पुरुषों को आपस में इस तरह

के समान जो क्रोध उठ रहा था, वह शान्त हो गया। दोनों को अपनी अपनी करनी पर पछतावा होने लगा, पर जो हो चुका, उसके दूर करने के लिये उनके हाथ में कोई उपाय न था।

यथा समय प्रतापसिंह ने कुलदेवता का अन्त्येष्टी संस्कार कराया, उनके वंश के लोगों को यथेष्ट भूमिवृत्ति नियत कर दी। कहते हैं, आज तक ब्राह्मण के वंशधर राजवृत्ति पाते चले आते हैं। इसके पश्चात् प्रतापसिंह ने अपने सहोदर शक्तसिंह को अपने राज्य से निकल जाने की आज्ञा दी। शक्त ने अपने बड़े भाई की आज्ञा को शिरोधार्य किया। वे तत्काल अपनी जन्मभूमि को छोड़ कर चल तो दिये, पर उनके हृदय का क्रोध शान्त नहीं हुआ। उनको अपने बड़े भाई से इस अपमान के बदला लेने की धुनि सवार हुई। बदला लेने की नियत से उन्होंने मेवाड़ के सदैव के वैरी मुग़ल सम्राट अकबर की शरण ली।

छटा परिच्छेद

भीष्म प्रतिज्ञा और सर्व्व आहुति

*"क्वचिद्भूमौ शायी क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचि
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि विचित्राम्बरधरो
मनस्वीकार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्"

प्रताप मेवाड़ के राजसिंहासन पर सुशोभित हुये, विशाल मेवाड़ के स्वामी हुये, अगणित नरनारियों के दुःख सुख का भार उनके हाथ में आया पर प्रताप के पास उस समय राज योग्य कोई सामग्री न थी। धन बल, जन बल उस समय मेवाड़ में कुछ भी नहीं था। स्वर्ग तुल्य मेवाड़ उस समय श्मशानभूमि बनी हुई थी। उस समय मेवाड़ जनशून्य था। मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़—मुगलों के हाथ में थी, मेवाड़ भूमि में चारों ओर उस समय अन्धकार छा रहा

---

* कभी पृथ्वी पर सो रहते हैं कभी उत्तम पलङ्ग पर शयन करते हैं। कभी साग पात खाकर रह जाते हैं, और कभी चावलादि का उत्तम भोजन करते हैं कभी गुदड़ी ओढ़ते हैं और कभी अच्छे वस्त्र पहिनते हैं कार्यार्थी। अर्थात् काम करनेवाले मनुष्य कभी दुःख सुख का अनुमान नहीं करते हैं।

"भूमि शायन कहुं पलग पै शाकहरा कहु मिष्ट,
कहु कथा सिर पाव कहु अर्थी सुख दुख इष्ट"—लेखक।

था। राजपूत वीरों के हृदय में से आशा की ज्योति बुझ चुकी थी। निराशारूपी महासागर में राजपूतगण गोते खा रहे थे, केवल मेवाड़ में ही नहीं चारों ओर राजस्थान में से प्रताप सिंह को कहीं से भी सहायता की कुछ आशा नहीं थी। राजपूत वीर अपनी स्वाभाविक वीरता को भूलकर मुग़ल दरबार के क्रीतदास बन चुके थे। उस समय चित्तौड़ की कैसी दशा थी इसका अनुमान पाठक केवल इसी से करलें कि चारण भाटों ने उस समय चित्तौड़ की उपमा विधवा स्त्री से दी है।

महाराणा प्रताप ऐसे ही राज के स्वामी हुये, उनके पास धन बल, जन बल कुछ न था, परन्तु सब से बढ़ कर हृदय का उत्साह था। वे जानते थे, जैसा उनका हृदय है वैसी राजपूताने की, मेवाड़ की, परिस्थिति नहीं है। परन्तु वीरवर प्रताप के हृदय पर बालक प्रताप रहते हुये जो संस्कार जम गये थे वे कभी दूर न हुये * अपने यहां के स्वदेशी चारण भाटों के मुख से अपने पूर्वजों के पूर्व गौरव का वृत्तान्त सुनते २ प्रताप के हृदय में चित्तौड़ उद्धार का उत्साह दूना होगया। यद्यपि अकबर की नीतिनिपुणता से समस्त राजपूताना अपनी मान मर्यादा पर लात मार कर पराधीनता की जञ्जीर में जकड़ा हुआ था। जो राजपूत किसी समय मेवाड़ की छाया तले में रहते थे उनमें से अधिकांश अकबर के बिना मोल

* वास्तव में दुर्बल हृदयों को बलवान करने के लिये महापुरुषों के जीवन चरित और वृत्तान्त से बढ़कर और कोई उपाय नहीं है। महाराजा शिवा जी के हृदय में भी स्वदेश भक्ति रामायण और महाभारत की कथाओं से हुई।

के चेरे बन गये। जो राजपूतगण एक समय चित्तौड़ की शिक्षा के लिये अपना खून बहाते थे वे ही अकबर की नीति परायणता के कारण चित्तौड़ की, मेवाड़ की, स्वाधीनता को मिटाने के लिये तैयार होरहे थे। जो राजपूत एक दिन मेवाड़ाधिपति के पसीने की जगह अपना खून बहाना अपना परम सौभाग्य समझते थे वे ही अकबर की नीति पाश में फस कर महाराणा के खून के गाहक बन बैठे थे। मारवाड़ के उदयसिंह अकबर के गुलाम बने हुये थे जयपुर के मानसिंह अकबर के सेनापति थे उन्होंने अपना हृदय तक अकबर को बेच दिया। बूंदी के हाड़ा जो महाराणा के परम मित्र थे समय समय पर महाराणा को सहायता देते रहते थे वे भी अकबर के हाथ की कठपुतली बन चुके थे। कहने का सारांश यह है कि उस समय राजपूतों के हृदयों से स्वदेश और स्वजातीयता का भाव एक दम दूर हो चुका था। राजपूत राजपूत का खून चूसना चाहता था यहां तक कि प्रताप के भाई † सागर जी और शक्तसिंह भी

† सागर जी भी प्रतापसिंह के द्वैमातृज भाई थे। इनके सगे भाई जगमल को सिरोही के राव सुलतान ने मारडाला था परन्तु इसका बदला प्रतापसिंह ने कुछ न लिया क्योंकि राव सुलतान राणा का दामाद था। इसी से बिगड़ कर सागर जी अकबर से जा मिले थे। अकबर ने उन्हें राणा की पदवी और चित्तौड़ दिया। कुछ इतिहास लेखकों का मत है कि जब जहांगीर के समय में प्रतापसिंह के पुत्र अमरसिंह की सन्धि हुई थी तब जहांगीर ने उनसे राणा की पदवी और चित्तौड़ छीन कर अमरसिंह को देदिया था। कुछ इतिहास लेखक कहते हैं कि सागर जी को अपनी करनी पर बहुत पश्चाताप हुआ था इस लिये वह अपने भतीजे अमरसिंह को चित्तौड़ देकर चले गये थे। जहांगीर ने उन्हें राणा की उपाधि दी थी सागर जी ने अजमेर में लाख रुपया लगाकर वाराह जी का मन्दिर बनवाया

भाई चारे और जननी जन्मभूमि के नाते को भूलकर अकबर की ओर जा मिले थे। पर इन सब बातों से प्रतापसिंह निराश और निरुत्साहित नहीं हुए राजपूतों की यह दुर्दशा देख कर वे दुःखित होते, अपने भाईयों की ऐसी स्थिति देखकर वे और भी दुःखित होते थे, परन्तु इन सब अड़चनों के आजाने पर भी वे व्रत से डिगे नहीं, उन्होंने अपने व्रतको पूरा करने के लिये, कठिन भीष्म प्रतिज्ञा धारण की।

संसार के बहुत से देशों में अपनी जन्मभूमि के उद्धार करने के लिये अनेक व्यक्तिओं ने कठोर प्रतिज्ञाएं धारण की हैं। परन्तु प्रताप की भांति विरले ही लोगों ने देशोद्धार का कठिन व्रत ग्रहण किया होगा। जानते हो, प्रताप का कठोर व्रत क्या था? अरे! दुर्बल हृदय उस कठोर व्रत की, कल्पना भी नहीं कर सकता है। प्रताप की उस असाधारण प्रतिज्ञा, भीष्म प्रतिज्ञा की बात सुनते ही, रोंगटे खड़े होजाते

था। उसे भी जहांगीर ने तुड़वा डाला था। इस कारण अथवा अन्य किसी प्रकार से जहांगीर द्वारा तिरस्कृत होने पर दरबार में अपनी छाती पर अस्त्राघात करके आत्मघात किया। सागर जी के एक पुत्र मुसलमानी से हुआ था, टाड साहब ने उसका नाम महावत खां लिखा है। किसी किसी इतिहास लेखक का मत है कि सागर जी के पुत्र ने मुसलमानी धर्म ग्रहण करके अपना नाम महावत खां रक्खा था। कोई कोई इतिहास लेखक कहते हैं कि महावत खां सागर जी की मुसलमानी स्त्री का बेटा नहीं था वह काबुल से आया था पहला नाम उसका ज़माना बेग था। यह नाम जहांगीर ने रखा था। जो कुछ हो जहांगीर के समय में महावत खां जैसा योधा और सेनापति था वैसा कोई नहीं था। कन्धार का दुर्ग सागर जी के अधिकार में था—लेखक।

हैं, आंखों में से पानी मेह की झड़ीके समान गिरने लगता है। अरे बिलासिता के प्रेमियों और दासो! तुम भोगविलास में पड़े हुए देशोद्धार की डींग हांकते हो। तुम अपने कान के पर्दे खोल कर उस राज पुत्र की, उस नरनाथ की प्रतिज्ञा सुनो, केवल सुन करही चुप मत हो जाओ, अपने हृदय के कपाटों को खोलकर उस प्रतिज्ञा को धारण करो। तब देखो तो सही कि प्रताप की प्रतिज्ञा कैसी थी? वह बज्र से और पत्थर से भी कड़ी थी या नहीं। परन्तु नहीं, तुम लोगों को प्रताप की प्रतिज्ञा पर ध्यान देने का समय ही कहां है? तुम्हारे पाषाण हृदय पर प्रताप की वह प्रतिज्ञा अपना प्रभाव कैसे जमा सकती है?।

जानते हो कि जननी से बढ़कर जन्मभूमिका सिद्धान्त प्रचलित है पर कितने लोगों ने अपने व्यावहारिक जीवन —"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"—इस वाक्य को कार्य्य में परिणत करके दिखलाया है। प्रताप इस वाक्य को केवल अपनी वाणी से रट कर ही शान्त नहीं हुए थे। उन्होंने अपने इस वाक्य को कार्य्य में परिणत करके दिखलाया था। प्रताप सच्चे क्रियाशील थे, उनके हृदय में अपनी जन्मभूमि की दशा पर शोक सागर उमड़ रहा था। जननी की मृत्यु पर बहुत आदमियों को शोक मनाते देखा है परन्तु प्रताप ने अपनी जन्मभूमि के लिये जो शोक किया था वह उनकी इस प्रतिज्ञा से ही प्रकट होता है कि जब तक चित्तौड़ का उद्धार न होगा तब तक हम और हमारे वंशधर बाल नहीं बनाये गे* सोने चांदी के पात्रों में भोजन नहीं करेंगे

* भारत दुर्भाग्य से चित्तौड़ को वह पूर्व गौरव फिर प्राप्त नहीं हुआ।

पलङ्ग पर कोमल शय्या पर शयन नहीं करेंगे इस प्रतिज्ञा के अनुसार कार्य किया गया। सभी सोने चांदी के वर्त्तन फोड़े गये सुखकी सब सामग्री नष्ट कीगई, राज परिवार ने कोमल पलङ्ग की शय्या परित्याग करके तृण की, घास की, शय्या ग्रहण की। स्वदेश भक्त प्रताप केवल इतना ही करके शान्त नहीं हुये। उन्होंने एक ऐसा उपाय किया जिससे यह शोक पट मेवाड़ के सामने सदैव के लिये रहा जावे। चित्तौड़ की स्वाधीनता नष्ट होने से पहले चित्तौड़ के रण डङ्के (नगाड़े) सेना के सामने रहते थे। परन्तु जन्मभूमि के उद्धार करने का व्रत स्मरण कराने के लिये वीरवर प्रताप ने आज्ञा दी कि "यह नगाड़े मेवाड़ की सेना के आगे न बजकर पीछे बजा करें। प्रताप ने कठोर प्रतिज्ञा की कि प्राण रहते मेवाड़ का गौरव नष्ट नहीं होने देंगे जन्म भूमि की मान मर्यादा की रक्षा के लिये कुछ बचा नहीं रखेंगे माता के दूध पर कभी नहीं आंच आने दूंगा।" बस इस भांति प्रताप ने कठोर देशोद्धारक का कठिन व्रत उठाया जिस प्रकार माता के परलोक वास करने पर उसकी वियोग वेदना में शोकाकुल होकर पुत्र कुछ दिनों के लिये सब सुख सामग्रियों का परित्याग कर देता है। वैसे ही प्रताप ने जन्मभूमि के शोक में सब सुख चैन पर लात मार दी।

राजर्षि प्रताप केवल स्वदेश के लिये स्वयं ही संन्यासी नहीं हुये किन्तु उन्होंने समस्त देशों को संन्यासी बना डाला।

जिसके कारण मेवाड़ के राणा आज तक रूपान्तर में उस आज्ञा को पालन करते आते हैं। शयन करते समय शय्या के नीचे घास रख दीजाती है, सोने चांदी के बर्तनों में पत्तों पर भोजन रखा जाता है। अब भी चित्तौड़ की सेना का रणडङ्का पीछे रखा जाता है—लेखक।

उन्होंने आज्ञा दी "समस्त प्रजा राज्य को छोड़कर पहाड़ों पर रहे। राज में कोई महोत्सवादि न हो। सब घर जला दिये जांय वहाँ कोई वाणिज्य कृषि आदि करने न पावें। कोई भी ऐसी वस्तु न रहे जिससे मुसलमान वैरियों का आकर्षण होने पावे। जो कोई राज आज्ञा भङ्ग करेगा उसे प्राण दण्ड होगा।" ऐसी आज्ञा वीरवर प्रताप ने अपने राज्य में प्रचलित करादी। हंसनेवालो! भले ही हंसो और कहो कि प्रताप की यह पागलपन की प्रतिज्ञा थी। संसार में किसी को किसी कार्य करने की सच्ची लौ लगी हुई होती है उसी को पागल कहते हैं। प्रेम में सभी पागल हो जाते हैं, प्रेम में मनुष्य अपना सर्वस्व खो बैठता है। वह प्रेम चाहे जैसा क्यों न हो! मजनू ने लैला के प्रेम में अपने प्राण तक गवां दिये थे। प्रताप का प्रेम लैला मजनू का सा न था। उनका प्रेम देशप्रेम योगीजनों की भाँति था जो ईश्वरीय प्रेम में सर्वस्व त्यागकर एकान्त सेवन करते हैं। उन्होंने अपने राष्ट्रीय यज्ञ को पूर्ण करने के लिये सर्वस्व स्वाहा कर दिया। अपनी प्रजा के हृदय में देश की शोचनीय स्थिति को बनाये रखने और देश की शोचनीय दशा सुधारने के लिये उन्होंने इस कठोर व्रत का अवलम्बन किया था।

प्रजा ने सहर्ष अपने नरनाथ की इस आज्ञा के सामने मस्तक झुकाया। बड़े सरदारों से लेकर साधारण श्रेणी की प्रजा तक प्रताप के इस कठिन व्रत में सहायता करने को उद्यत हुई। अपनी प्रजावर्ग की सहायता से प्रताप ने देशोद्धारक का शुभ अनुष्ठान आरम्भ किया।

सातवां परिच्छेद

राजाज्ञा भङ्ग का दण्ड

"अहो, जिनको विधि सब जीव सों बढ़ि दीनों जग काज।
अरे, धान सलिल यारे सदा जे जीतहिं गजराज॥
अहो भुक्यो न जिनको मान ते नृपवर जग सिरताज।
अरे सहहिं न आज्ञा भङ्ग जिमि दन्त पात मृगराज॥
अरे, केवल बहु गहिना पहिरि राजा होइ न कोय।
अहो, जाकी नहिं आज्ञा टरे सो नृप तुम सम होय॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

महाराणा प्रताप केवल देशोद्धार के कठोर व्रत पालन करने की आज्ञा देकर ही निश्चिन्त नहीं हुए। वे घोड़े पर सवार होकर अकेले अपने राज्य में घूमते थे और छिप छिप कर देखते थे कि उनकी आज्ञा पालन होती है या नहीं। जो कोई उनकी आज्ञा भङ्ग करता था, वह पकड़ा जाता था और कठोर दण्ड पाता था। थोड़े ही दिनों में मेवाड़ के अधिकांश स्थान उजड़े हुए दिखाई देने लगे। यहां तक कि राजपथों पर ठसाठस भीड़ लगी रहती थी, जिन पर रास्ता मिलना कठिन हो जाता था, तिल रखने को भी स्थान नहीं मिलता था, वे सुनसान दिखलायी पड़ते थे। जिन बड़ी बड़ी अट्टालिकाओं में कोलाहल के कारण एक शब्द भी सुनना मुश्किल होजाता था, वे उजड़ी हुई पड़ी थीं, उनमें पशु पक्षियों ने अपने घोंसले बना लिये थे। जिन राज

महलों में रोशनी के कारण आंखें चकाचौंध होजाती थीं उनमें अन्धेरा छाया हुआ था। जिन स्थानों में हाथियों की चिग्घाड़ और घोड़ों की हिनहिनाट रात्रि दिन सुनाई पड़ती थी उन स्थानों को जङ्गली पशुओंने अपना अड्डा बनालिया था। जिन स्थानों में सुन्दर पुष्प वाटिकायें बनी हुई थीं जहां पुष्पों की सुगन्धि से मस्तक में तरावट होजाती थी अब वे स्थान कटीले वन होगये थे। फूलों के स्थान में बहुत से कांटे उगआये थे। जिन खेतों में हरीभरी फसल लहराती थी वहां लम्बी लम्बी घास उग आई थी। बहुत से रास्ते जङ्गली कटीले वृक्षों और झाड़ियों से रुक गये थे। जिन बड़े बड़े महलों में अप्सराओं सी रूपवती कमल नयनी सुन्दरियां रहती थीं वहां अब भयंकर जङ्गली जन्तुओं का वास था। कहां तक कहें —स्वर्ग तुल्य मेवाड़ की श्मशानभूमि से भी गई बीती दशा होगई थी।

एक दिन प्रताप अपने साथियों के साथ बनास नदी के किनारे अनतल्ला नामक स्थान में घूमरहे थे; इतने में क्या देखते हैं कि एक गड़ेरिया छिप कर अपनी भेड़ बनास नदी के किनारे उगी हुई बड़ी बड़ी घास पर चराने के लिये लाया था कि दैव संयोग से राणाजी की उस पर निगाह हुई। उस बेचारे को क्या मालूम था कि महाराणा खोजते खोजते यहां तक आजावेंगे, यह समझे हुये था कि इस निर्जन स्थान में उसे कोई देख नहीं सकेगा। परन्तु नहीं उसका अनुमान मिथ्या निकला। महाराणा यहां पहुंच ही तो गये। महाराणा को सामने देखते ही बेचारे गड़रिये के होश फ़ाख्ता होगये, महाराणा ने उसे आज्ञा भङ्ग के लिये कठोर दण्ड की

व्यवस्था दी कि गड़ेरिया को प्राण दण्ड मिला। उसकी लाश एक पेड़ पर लटका दीगई, जिससे दूसरे लोगों को आज्ञाभङ्ग करने की शिक्षा मिलती रहे। बस इस तरह से उस श्यामल सस्यपूर्ण स्वाभाविक सुन्दरता की खानि समतल मेवाड़ की अवस्था उस अबला के समान होगयी जो विधवा होते ही अपना सब शृङ्गार, गहने कपड़े उतार, मलिन, हीन भिखारिणी के समान हो जाती है। शस्यशालिनी मेवाड़भूमि मरुस्थली बनगई।

मेवाड़ को उजाड़ कर राजर्षि प्रतापसिंहने अपनी राजधानी कुम्भलमेर में बनाई तथा गोगूंदा आदि पहाड़ी किलों को दृढ़ किया। मुसलमानों से लड़ने की तैयारी करने लगे। परन्तु उस समय उनके परिवार की दशा और भी भयानक थी कि जो सदा राजोचित भोगविलास करते आये थे, वे दीन भाव से भिखारी के समान कन्दराओं में, गुफाओं में भटक रहे थे। राजमहिषी को अपने हाथ से रसोई बनाकर पेड़ों के नीचे घास के बिछौनों पर सोना पड़ता था। इस भांति प्रताप का राज परिवार भी अपना समय बिताने लगा।

प्रतापने जिस कुम्भलमेर में अपनी सेना इकट्ठी की थी वह मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेश के बीच में है। उस प्रदेश में जाने के लिये एक दो से अधिक पहाड़ी रास्ता नहीं है। मुग़ल सेना उस प्रदेश से बाहर इकट्ठी हो रही थी। पहाड़ी प्रदेश का उसे कुछ भी पता न था। मेवाड़ के उजड़ जाने से बादशाही सेना को खाने पीने की सामग्री का अभाव था। इसलिये बादशाही सेना का, भोजन की यथेष्ट सामग्री और सैन्य बल बिना उस प्रदेश में घुसना असम्भव था।

राजपूत वीर अपने प्रदेश के सभी रास्ते घाटी नाले जानते थे। वे लोग बीच बीच में मुग़ल सेना पर आक्रमण करके उस के छक्के छुड़ा देते थे। उस समय उत्तर भारत से वाणिज्य की जो चीज़ें यूरोप को जाती थीं, वह अरवली के पास हो कर सूरत जाने पर जहाज़ पर लादी जाती थीं। राजपूत लोग इन वस्तुओं को लूटने लगे। इस तरह से धीरे धीरे इस रास्ते से यात्रियों को चलना भी मुश्किल होगया था। मुग़ल सेना धीरे धीरे बढ़ रही थी, वीर प्रताप उन्हें रोकने के लिये उत्तर भाग की पहाड़ी गुफ़ा की ओर बढ़ रहे थे इस स्थान का नाम हल्दीघाटी है।



आठवां परिच्छेद

अकबर की कपट लीला

"मधुर वचन ते जात मिट, उत्तम जन अभिमान।
तनक शीत जल सों मिटै, जैसे दूध उफान ॥"—वृन्द ॥

"जाको धन धरती हरी ताहि न लीजे संग।
जो संग राखे ही बनै तो करि राखु अपंग ॥
तो करि राखु अपंग फेरि फरकै सुन कीजै।
कपट रुप बतराय ताहि को मन हरि लीजै ॥"

—गिरधर कविराय

आइये ! पाठक !! आइये !!! थोड़ी देर परम पुनीत प्रताप-चरित की आलोचना न करके उनके प्रतिद्वन्दी अकबर की नीतिकुशलता पर भी विचार करें। हम लोगों को इतिहास में पढ़ाया गया है कि अकबर हिन्दुओं के बड़े मित्र थे। हिन्दुओं से बड़ा प्रेम करते थे हिन्दुओं के साथ अकबर का व्यवहार बहुत ही अच्छा था। कोई कोई इतिहास लेखक अकबर के गुणों पर फूलकर कुप्पा हो गये हैं। बहुत से लोगों ने "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा"—यह उपाधि अकबर को देकर अपनी उदारता की हद कर दी है। स्कूलों में कोमल मति के बालकों को पढ़ाया जाता है कि अकबर से बढ़कर मुसलमानों में कोई बादशाह नहीं हुआ। हिन्दू उससे प्रसन्न रहते थे और मुसलमान सदा उससे नाराज़ रहते थे। वह मुसलमानों की नाराज़ी की कुछ भी परवाह

न करके सदैव हिन्दुओं का पक्ष करता रहा। आज कल के मदरसों में हमारे जिन पाठकों ने इतिहास का अध्ययन किया है अथवा जो कोमल मति के बालक और नवयुवक पढ़ रहे हैं। वे हमारे उपर्युक्त कथन से सहमत होंगे कि वास्तव में स्कूलों में पढ़ाये जाने वाले इतिहासों में बादशाह अकबर की ऐसी ही प्रशंसा–बल्कि इस से भी बढ़ कर लिखी हुई है। कवि की कल्पना नहीं है लेखक का वाक्य आडम्बर शब्द रचना भी नहीं है। वस्तुतः इतिहास में अकबर को हिन्दुओं का मित्र ही कह कर सम्बोधन किया गया है। कहा गया है कि अकबर के दरबार में गंगा जल पिया जाता था, उसने अपने राज्य में गोवध की मनाई करा दी थी और साल भर में छः महीने से ऊपर अकबर मांस भक्षण भी नहीं करता था। हिन्दुओं की तरह अपना लिबास रखता था। तब कहो क्यों न अकबर को हिन्दुओं का मित्र और पक्षपाती कहा जाय। और अकबर के प्रपौत्र—औरङ्गजेब को जानते हो न! वह कैसा था? वह हिन्दुओं का बादशाह विद्वेषी था, उसने हिन्दुओं के मन्दिर तोड़े, बहुत से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया। इतिहास कहता है कि वह हिन्दुओं से घृणा करता था। उसने कितनी ही बार हिन्दुओं को कतल कराया था। कहो तो सही अकबर और औरङ्गजेब के आचरणों से तुम लोगों ने क्या परिणाम निकाला है और क्या समझे हो? अरे! तुम क्या उस समय के हिन्दू भी, राजपूत भी बादशाह अकबर की हलाहल विष भरी नीति को नहीं समझे थे। यदि राजपूत वीर गण अकबर की इस ज़हरीली नीति को समझ गये होते तो, क्या आज

हमारी वृद्धा माता भारत के पैर पराधीनता की कठोर बेड़ी से जकड़े जाते। समझ ते हो न! अकबर का इस आडम्बर में मूल सिद्धान्त क्या था? अरे! अकबर की कुटिल नीति चाणक्य पण्डित और जर्मनविस्मार्क से भी कठोर थी। चाणक्य ने केवल नन्दवंश का नाश करके चन्द्रगुप्त का राज्य बसाया था। विस्मार्क ने फ्रांस को नीचा दिखाकर तथा जर्मनी के भीतरी विसवों को शान्त करके—जर्मन राज्य की पुनः स्थापना की थी। पर अकबर की नीति का पता लगाना टेढ़ी खीर है। अकबर का हिन्दूपन का ढोंग क्या था? हम साफ और खुले शब्दों में कहेंगे कि वह अकबर की कपट नीति थी और कपट नीति भी कैसी?—विषस्य विषौषधम्, अर्थात् विष की औषधि विष है। ज़हर से ही ज़हर शान्त होता है। लोहा लोहे से ही काटा जाता है। बस, अकबर की यही नीति थी कि हिन्दू जाति का हिन्दुओं द्वारा ही नाश किया जासकता है। राजपूत वीर राजपूतों द्वारा ही वश में किये जासकते हैं। यही तो अकबर का हिन्दूपन था। इसलिये वह हिन्दुओं से प्रेम करता था। यदि अकबर Divide and rule की अर्थात् भेदभाव और शासन करने की नीति का प्रचार न करता तो नहीं कह सकते कि सब से बड़े मुग़ल सम्राट, नहीं नहीं मुसलमान सम्राट का राज्य उस समय अटल रहता या नहीं। चतुर चूड़ामणि अकबर देख चुका था कि उसके दादा (पितामह) बाबर को राणा सांगा की अधीनता में राजपूतों से कैसा कैसा सामना करना पड़ता था। अकबर जानता था कि यहां वालों के कारण उसके बाप हुमायूं को दिल्ली का तख़्त तक छोड़ना पड़ा था। इसलिये दूरदर्शी

अकबर ने सोचा कि पांव में गड़े हुए कांटे को हाथ के कांटे से निकालते हैं, वैसे ही अन्दर से अपने वश में किये हुए, शत्रु से शत्रु को नाश करना चाहिये। मिश्री देने से ही किसी का प्राण नाश होता हो वहां विष देने की ज़रूरत ही क्या है ? बस, अकबर का यही सिद्धान्त था, सिद्धान्त क्या था ? कपट जाल था। बस, उसके इस कपटजाल में भोले राजपूत फंस गये। जिस तरह से मछली थोड़े से आटे के लालच में आकर अपने प्राणघातक की बंसी में फंस जाती है, अथवा यों कहिये थोड़ी सी मधुर तान के लालच में दौड़ता हुआ हिरण, ठहर कर शिकारी का निशान बन जाता है, वही दशा राजपूत जाति की हुई, इस नीति के कारण।

शत्रु की अपेक्षा मित्रों से भारतवर्ष का विशेषतः राजपूताने का सत्यानाश हुआ है। यह सच है कि औरङ्गज़ेब हिन्दुओं का विद्वेषी था, परन्तु हिन्दू भी उसके विद्वेष से चिढ़ कर उससे मुकाबिला करने को तय्यार हुए थे, औरङ्गज़ेब के विद्वेषभावने हिन्दुओं को अपने भूले हुये स्वरूप का ज्ञान कराया। औरङ्गज़ेब के विद्वेषभाव के कारण ही दिल्ली की बादशाही ख़ाक में मिल गई। पर अकबर का हिन्दुओं की मित्रता के कारण राज्य जम गया। इस समय, जो मुसलमान अकबर की कुटिल नीति के मर्म को न समझ कर उस पर नाक भौं सिकोड़ते थे, चिढ़ते थे, वे भूलते थे। अकबर ने हिन्दू आचरण का ग्रहण करके, राजपूतों के विशुद्ध रक्त तक को कलङ्कित करने की चेष्टा की थी। औरङ्गज़ेब निष्ठुर शासक हो सकते हैं, माना उन्होंने हिन्दुओं पर बहुत से अत्याचार किये थे पर अकबर ने हिन्दुओं का विशेषतः राजपूतों

का खून खटमल अथवा जुएं की तरह से पीनेकी कोशिश की थी वैसा औरङ्गज़ेब ने नहीं किया * औरङ्गज़ेब में हजार दोष हों, पर वे अकबर के समान विलासी और इन्द्रिय निरत न था। अकबर की तरह औरङ्गज़ेब न तो नाच गान पसन्द करते थे और न अकबर की भांति हिन्दुओं की स्त्रियों के सतीत्व रत्न को हरण करना चाहते थे। अकबर हिन्दुओं पर प्रीति दिखाते थे सही, परन्तु उनका भीतरी अभिप्राय हिन्दुओं को बलहीन, धर्महीन और जातिहीन करने का था और वह कैसे अपने इस मनोरथ को सफल करते थे, सो आगे पढ़ियेगा।

* औरङ्गज़ेब और बादशाहों की तरह भोगविलासी न था। मरते समय उसने लिखा है कि टोपियां सी कर जो मैं बेचता था, उसका साढ़े चार रुपया बाकी है, वही मेरे कफन में खर्च किया जावे और मैंने कुरान लिख कर ८०५) रुपया जमा किया है उसे फकीरों में बांट देना। इससे मालूम होता है कि शिल्प कार्य और साहित्य सेवा द्वारा औरङ्गज़ेब अपना निज का खर्च चलाता था। नासिरुद्दीन मुहम्मद—जो शमसुद्दीन अलतिमश का बेटा था, हिन्दुस्तान के बादशाह होने पर भी बड़े सादे स्वभाव का रहा। उसने सिर्फ अपनी एक ही शादी की, अपनी बेगम से ही खाना बनवाता था—कोई बांदी या मजदूरिन उसके पास नहीं रहने देता था, जो गरीब मुहताजों के खाने में आता है वही आप खाता था। साहित्य सेवा करके अपना गुज़ारा करता था। एक दिन किताब नकल की और एक मुल्ला को दिखलायी, मुल्ला ने उसमें कुछ भूलें बतलायीं जो उसके सामने तो उसके कहने के मुताबिक ठीक करदीं पर पीछे फिर पहले की भांति बनादिया एक आदमीके पूछने पर कहा:- मैं जानता हूं कि जो कुछ मैंने लिखा है सही है, पर उसके सामने न करता तो उसका जी दुखता।—लेखक।

——:o:——

नवां परिच्छेद

"नौरोज़ा" और अवला का आत्मिकवल

धनि धनि भारत की छत्राणी।
वीर कन्यका वीर प्रसविनी वीरवधू जगजानी॥
सती शिरोमणि धर्म धुरन्धरि बुधि बल धीरज खानी।
इनके जस की तिहुं लोक में अमल ध्वजा फहरानी॥
—हरिश्चन्द्र

खरीददार रमणी जहाँ, रमणी बेचनहार।
रमणी गण के रूप का, लगा अनूप बाज़ार॥

हमारे बहुत से पाठकों ने नौरोज़ के मेले का नाम सुना होगा। इस नौरोज़ के मेले के चलाने वाले, हिन्दुओं को लाड़ प्यार करनेवाले बादशाह अकबर ही थे। अकबर से पहले और उसके पीछे भी किसी की बुद्धि में "नौरोज़े" जैसे मेले के प्रचलित करने की नहीं समाई। इस नौरोज़े में होता क्या था? अजी कुछ भी नहीं, होता क्या था—खाक़! बादशाह अपने राज्य की भीतरी अवस्था जानने के लिये नौरोज़े का मेला किया करते थे अकबर के लाड़ले दुलारे वज़ीर अब्बुल फ़ज़ल ऐसा ही कहते हैं। अब्बुलफ़ज़ल को हम कुछ दोष नहीं देते। ठीक ही है; 'समरथको नहिं दोष गुसांई' यदि अकबर के समय में कोई दूसरा नौरेज़ के मेले का अकबर के समान ही, आडम्बर रचता तो अब्बुलफ़ज़ल इतने उदार हो जाते कि वे अपनी सारी पुस्तक में नौराज़े का

मेला करनेवाले को लानत मलामत देते। स्वयं अकबर ही ऐसे मेले करने वालों की खाल ही उधड़वा डालते पर नहीं अकबर और अब्बुलफ़ज़ल दोनों ही इस मेले में कोई बुराई नहीं समझते थे। अब्बुलफ़ज़ल ने इस नौरोज़े के मेले को लेकर अकबर की खूब ही वकालत की है। अकबर को नौरोज़े के मेले से मुक्त करने के लिये उदार हृदय से स्याही खर्च की है। चतुर च्यूड़ामणि अब्बुलफ़ज़ल ने नौरोज़ शब्द के अर्थ की खूब ही हत्या की है। भला कहीं सत्य भी छिपाये से छिप सकता है। अब्बुलफ़ज़ल अकबर के माथे से बहुत कुछ कलङ्क हटाने की चेष्टा करने पर भी झूठ छिपाने में समर्थ नहीं हो सके हैं। अब्बुलफ़ज़ल के शब्दों में ही सुनियेगा प्रतिमास के बड़े बड़े त्योहारों के बदले में इसी नौरोज़ के नौ दिन माने गये थे। नयी साल के नौ दिन नहीं थे। नौरोज़ के नौ दिनों में सब मुसलमान आनन्द मनाते थे "नौरोज़" के नौ दिनों में से एक दिन बादशाह स्त्रियों के लिये मेला करते थे। स्त्रियों के इस मेले में बड़े बड़े सौदागरों की स्त्रियां अपने अपने यहां का माल बेचने लाती थीं बादशाह की बेगम, शाहजादियां, अमीर, उमराव, रईस, राजा लोग जो बादशाह अकबर के आश्रित में रहते थे उनकी स्त्रियां सभी अपनी जरूरत की चीजें खरीदतीं थीं इस तरह से नौरोज़े मीना बाज़ार राजधानी दिल्ली के महलों में रूप की हाट लगती थी। और बादशाह अकबर क्या करते थे? पक्षपाती और खुशामदी इतिहास लेखकों की कपाल क्रिया क्योंकि अब्बुलफ़ज़ल जैसे खुशामदी इतिहास लेखक कहते हैं कि अकबर अपने राज्य की भीतरी अवस्था जानने के लिये मेला करते थे। वाह क्या खूब अच्छा राज्य की भीतरी अवस्था

जानने का उपाय सोचा। न मालूम अब्बुलफ़ज़ल यह कहना क्यों भूल गये कि बादशाह रूपसुधा का पान करते थे। बादशाह की आन्तरिक पाप वासना को जान नहीं सके बादशाह अकबर मूर्खों की आंख में धूल झोंक कर छिपे २ कितनी ही मृग नयनियों का शिकार करते थे। इस नौरोज़े का नाम ख़ुशरोज़ अर्थात् आनन्द का दिन भी था। इस दिन बादशाह अकबर अपनी इन्द्रियोजनित पाप वासना की तृप्ति कर के आनन्द के महासागर में मग्न होते थे। न मालूम आज के दिन बादशाह ने कितनी ही ललनाओं के सतीत्व रूपी रत्न को छल बल कोशल से ख़रीद लिया था। कितनी ही अबोध ललनाएं लोभ, लालच में आकर अपने सतीत्व को अकबर के हाथ बेच चुकी थीं बीकानेर के रामसिंह की स्त्री ने रत्न अलङ्कार के लालच में आकर अपने अमूल्य रत्न सतीत्व को अकबर के हाथ में समर्पण कर दिया। अकबर का नियम ही ऐसा था कि जो राजपूत उसके अधीन होता था उसको अपनी बहू बेटी मीनाबाज़ार में भेजनी पड़ती थी अकबर के अधीनस्थ राजाओं में केवल * बूंदी के हाड़ा राजाओं ने अपनी

* सच पूछिये तो उस समय हिन्दुओं में संगठन शक्ति के न होने के कारण ही बादशाह अकबर अपना विशाल साम्राज्य स्थापित करने में समर्थ हो सके थे। चित्तौड़ के वीरों के समान ही बूंदी के हाड़ा वीरों के कारण अकबर के छक्के छूट गये थे। बूंदी के राव सुर्जन जी के समय में बूंदी राज्य की अकबर से सन्धि हुई थी। अकबर बूंदी राज्य से सन्धि करने के लिये इतना छटपटा रहा था कि वह स्वयं बूंदी के दरबार में जयपुर के राजा भगवानदास और राजा मानसिंह के साथ नौकर के भेष में गया था। सं० १६२४ विक्रमी में बूंदी राज्य से सन्धि हुई थी। देखो–Tod's Rajasthan Vol. II —लेखक।

वह बेटियाँ को मीनाबाज़ार में नहीं भेजा था। उनकेसन्धि पत्र में साफ़ लिखा हुआ है कि बूंदी के राजा न कभी बादशाह को डोला देंगे और न उनकी वह बेटियां नौरोज़े के मीना बाज़ार में जांयगी। बूंदी के राजवंश को छोड़कर अकबर अपने अधीन राजाओं के रक्त तक को नौरोज़े के मेले की आड़ में अपवित्र कर रहा था। परन्तु सभी राजपूत ललनाएं अपना आत्म विक्रय करने को तैयार नहीं होती थीं कि एक राजपूत ललना से अकबर को किसी तरह से अपने पापिष्ट विचार के लिये क्षमा प्रार्थना करनी पड़ी थी, उसकी बातें सुनिये।

बीकानेर के राजकुमार पृथ्वीराज अकबर के यहां राजनैतिक क़ैदी थे परन्तु क़ैदी होने पर भी उन्होंने अपने हृदय की स्वतन्त्रता नहीं बेची थी। पृथ्वीराज बड़े कवि थे, निडर थे और पूरे देशभक्त थे। उनके विचारों के समानही उन्हें धर्मपत्नी मिली थी। उनकी धर्मपत्नी महाराणा प्रताप सिंह की भतीजी और शक्तसिंह की पुत्री थी। उसे अपने सीसोदिया कुल का अभिमान था। जैसी गुणवती थी, वैसी ही रूपवती थी, राजस्थान भर में वह अद्वितीय सुन्दरी थी। एक दिन उस स्त्री को नौरोज़े के मीना बाज़ार में जाना पड़ा था। मीना बाज़ार में बादशाह अकबर छल भेष में स्त्रियों को ताड़ा करते थे, वे उस सुन्दरी को देख कर मोहित होगये। उन्होंने समझा कि अन्य स्त्रियों के समान वह भी अपना आत्मसमर्पण उनको करदेगी। परन्तु वहां तो बातही दूसरी निकली, उनका पृथ्वीराज की स्त्री के सम्बन्ध में भ्रम था। वह सीसोदिया कुल की बेटी थी उसका सतीत्व हरण करना खेल नहीं था उन्हें क्या मालूम था कि

आज मृगनयनी को अपने फन्दे में नहीं फंसाया, वल्कि सिंहनी के फन्दे में फंसे हैं। अकवर ने उस सती को लोभ लालच से अपने वश में करना चाहा, परन्तु तेजस्वनी, वीर वाला ने यह कुछ भी ख़्याल न करके कि अकवर भारत का सम्राट है उसकी छाती पर चढ़ वैठी और कमर में से छुरा निकालकर कहा :—"अरे! नराधम !! पापिष्ट !! ईश्वर की शपथ खाओ कि फिर कभी राजपूत कुल कलङ्कित करने की चेष्टा नहीं करोगे। नहीं तो अभी तुमको इस छुरी से यमलोक को पहुंचाती हूं। कहावत है कि चोर के कभी पैर नहीं होते, अन्याय के कटीले वृत्त और पर्वत के समान बड़े पापियों के कलेजे भी ज़रा से न्याय के पत्ते हिलने पर दहल जाते हैं। वो ही दशा वादशाह अकवर की हुई अकवर भारतवर्ष के भाग्य सम्राट भले ही रहे पर पृथ्वीराज की वीरवाला के साहस को देखकर उनका भी कलेजा दहल गया और विना किसी संकोच के रानी के कथन के सामने मस्तक झुकाया। धन्य मातृभूमि है, जहां किसी समय ऐसी वीराललनाएं हुई थी। आज इस गई वीती दशा में भी भारतमाता का ऐसी पुत्रियों के कारण ही मस्तक ऊंचा है। परन्तु हाय! आज ऐसी स्त्रियां होना तो दूर रहा, पुरुष भी नहीं हैं। अस्तु, पाठक! राजपूत जाति अकवर की कुटिल नीति में इस वात में फँस कर अपनी वंश मर्यादा, मान और अप्रतिष्ठा तक भूल चुकी थी तव केवल राजस्थान के ध्रुवतारा प्रतापसिंह ने अकवर का मुक़ाबिला करने की ठानी।

दशवां परिच्छेद

मान का अपमान

"जिन कुल की मरजाद लोभवस दूर बहाई ।
जीवन भय जिन खोइ दई आपुनी बड़ाई ॥
जिन जग सुख हितकरी जाति की जगत हँसाई ।
लखि जिनको मुख वीर सबै सिर रहे नवाई ॥
तिनके संग खानो कहा मुख देखनहूं पाप है ।
जाइ सीस वद धर्म हित यह शिशोदिया थाप है ॥"

—श्री राधाकृष्णदास

सर्वग्रासी अकबर ने एक एक करके सब देशी रजवाड़ों को हड़प लिया था, सभी उसके मन्त्र बल से मुग्ध होगये थे। आर्यजाति के एकमात्र आराधनीय रघुकुल-कमल दिवाकर धर्मरक्षक, पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी ने जिस सूर्यकुल की शोभा बढ़ाई थी, उसी सूर्यकुल की सन्तान जयपुर नरेश अकबर के सब से पहले दास बने थे। जयपुर के राजा मानसिंह अकबर के दाहिने हाथ थे। कई मुसलमानी इतिहास लेखकों ने लिखा है कि जयपुर, जोधपुर आदि के राजागण उस समय बादशाही सलतनत के खम्भे थे। वास्तव में यह ठीक ही है यदि राजपूतगण अकबर के साथ न होते तो कदापि अकबर निष्कण्टक राज्य न कर सकते। जिन राजपूत-नरेशों ने अकबर की वश्यता स्वीकार की थी उनमें से मुग़ल राज्य में जयपुर-नरेश-राजा मानसिंह

का बड़ा मान था। कछवाओं के भाटों और चारणों ने राजा मानसिंह की कीर्ति में बड़ी बड़ी ओजस्विनी कविताएँ की हैं। कहा जाता है कि अकबर का आधे से अधिक राज्य राजा मानसिंह द्वारा ही विजय किया हुआ था। चारणों की कविता में लिखा हुआ है कि पश्चिम में ईरान के पर्वत पेरोपामीशस तक और पूर्व में अराकान (ब्रह्मा) तक देश इस राजपूत राजा ने राजपूत सेना की सहायता से जीत कर अकबर के अधीन कर दिये थे। इस प्रकार राजा मानसिंह के सम्बन्ध में बहुतसी बातें चारणों और भाटों ने लिखी हैं। जो कुछ हो राजा मानसिंह ने अकबर के राज्य की उन्नति करने में कुछ कसर नहीं छोड़ी थी। मुग़ल साम्राज्य की उन्नति करने में राजा मानसिंह जाति द्रोह, देश द्रोह तक करने में नहीं हिचके। अकबर की दाहिनी भुजा इन्हीं राजा मानसिंह के कारण, राजस्थान के ध्रुवतारा हिन्दूपति महीमहेन्द्र यावनार्य, कुल-कमलदिवाकर-महाराणा प्रतापसिंह को अनेक कष्टसहन करने पड़े थे। प्रतापसिंह के साथ अकबर के युद्ध के कारण यही राजा मानसिंह हुए।

मानसिंह दक्षिण में शोलापुर को विजय करके दिल्ली जारहे थे, राह में मानसिंह जी उनकी राजधानी कुम्भलमेर में आये। प्रतापसिंह हृदय से चाहे जो कुछ थे, परन्तु अपने सीसोदिया कुल के अनुसार उन्होंने राजा मानसिंह का खूब आदर सत्कार किया। स्वयं उदय सागर तक जाकर उनका स्वागत किया और बड़े आदर सत्कार के साथ उनको अपने यहां ठहराया। उसी नवप्रतिष्ठित राजधानी में, उदय सागर के तट पर मानसिंह के भोजन का प्रबन्ध किया गया।

एक तो राजा के अतिथि, दूसरे मुंह मांगे मेहमानी, तीसरे मेवाड़ के चिर शत्रु सम्राट अकबर के प्रधान युद्ध मंत्री, तिसपर महाराणा की आज्ञा, इन कारणों से भोजन का प्रबन्ध यथा सम्भव अच्छा किया गया।

राणाप्रताप उस समय व्रतधारी थे सोने चांदी के वर्त्तनादि सभी उन्होंने छोड़ रक्खे थे। परन्तु उन्होंने मान-सिंह के आतिथ्य सत्कार में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं की। अपने जेष्ठ पुत्र युवराज अमरसिंह को आतिथ्य का भार सौंपा। मानसिंह भी युवराज अमरसिंह की अभ्यर्थना से सन्तुष्ट हुए।

मरमर पाषाण निर्मित सुन्दर सरोवर के तीर भोजन का प्रबन्ध किया गया, भोजन के लिये स्थान सजाया गया। भोजन की सामग्री धीरे धीरे आने लगी, ठीक समय पर राजा मानसिंह को भोजन के लिये बुलावा भेजा। मानसिंह आये और भोजन करने के लिये आसन पर बैठ गये, भोजन करने से पहले ही तीक्ष्ण बुद्धि मानसिंह समझ गये कि महाराणा प्रताप सिंह क्यों नहीं आये? उन्होंने भोजन करने से पूर्व पूछा कि महाराणा कहां हैं? अमरसिंह ने विनीत भाव से उत्तर दिया—"महाराणा के सिर में दर्द है, इसलिये वे नहीं आसके हैं, आप भोजन करें, इस बात का कुछ ख्याल न करें"। मानसिंह महाराणा के न आने का उद्देश्य समझ गये और उत्तर दिया:—"राणाजी से कहो, हम उनके सिरकी पीड़ा का मर्म अच्छी तरह से जानते हैं जो होना था सो होचुका अब उसके दूर करने का कोई उपाय नहीं है। यदि राणाजी ही हमारे साथ भोजन नहीं करेंगे तो और कौन

करेगा ?" तत्काल मानसिंह का यह सन्देश—प्रतापसिंह को पहुंचाया गया वे अनेक प्रकार से वहां आने के लिये टालबाजी करने लगे, पर कुछ फल न हुआ। मानसिंह इसी बात पर अड़े रहे कि जब तक राणाप्रताप मेरे साथ भोजन करने नहीं बैठेंगे तब तक मैं भोजन नहीं करूंगा।

उन्होंने भोजन करने का कारण छिपाना उचित नहीं समझा। उन्होंने स्पष्ट कहला भेजा :—"जिस राजपूत ने अपनी बहिन को तुर्क के हाथ बेच दिया है सम्भवतः जिस का मुसलमानों के साथ खानपान होता है उनके साथ राणा भोजन नहीं कर सकते।"

अब तो मानसिंह को अपनी भूल ज्ञात हुई कि 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' अपने मन से मेहमानी ग्रहण करके अच्छा नहीं किया। वे सोचने लगे कि अपमान का कारण हम स्वयम् ही बने थे। उन्होंने ग्रास (कौर) नहीं उठाया, केवल कुछ दाने अन्नदेव के नाम से उठाकर पगड़ी में रख लिये और चलते समय राणा प्रताप से कहा :—"आपके मान मर्य्यादा की रक्षा के ही लिये हमने अपनी सब प्रतिष्ठा और गौरव धूल में मिला दिया है यदि आपकी इच्छा सदैव दुःख सागर में पड़े रहने की है तो भलेही पड़े रहिये। अब आपको मेवाड़ सदैव के लिये छोड़ना पड़ेगा, अब आपको मेवाड़ में चुल्लूभर जमीन भी नहीं मिलेगी।" इतना कहकर मानसिंह घोड़े परसवार होने ही को थे कि प्रताप आ पहुंचे उस समय मानसिंहने बड़े अभिमान से कहा :—"यदि आपका दर्प दमन न कर सका तो हमारा नाम मानसिंह नहीं।" प्रताप ने शान्त भाव से उत्तर दिया कि आप को युद्धक्षेत्र में

देखकर ही हम प्रसन्न होंगे। पास खड़े हुए प्रताप के किसी राजपूत सरदार ने यह कटाक्ष करते हुए कहा:—"अपने साथ अपने फूफा अकबर को भी लेते आना।" मानसिंहने अपने घोड़े पर सारा क्रोध उतारा, उस बेचारे घोड़े के ज़ोर से एंड़ लगाई घोड़ा भी हवासे बात करता हुआ, अपने स्वामी को लेकर नौ दो ग्यारह हुआ।

जहां मानसिंह के भोजनकी सामग्री हुई थी वह स्थान भगवती भागीरथी के पवित्र, पुनीत जल से धोया गया, जिस जगह मानसिंहने भोजन किया वह स्थान भी धोया गया। राजपूत कुल-कलङ्क मानसिंह का जिन्होंने मुंह देखा, उन सबोंने स्नान किया, जनेऊ बदले। स्वयं महाराणा प्रताप-सिंह ने मानसिंह का मुख देखने के कारण स्नान कर अपने को शुद्ध किया।

उदय सागर पर जो बातें राजा मानसिंह के चले जाने पर हुईं उनकी ख़बर मानसिंह के कान तक पहुंची और धीरे धीरे अकबर के कानों तक भी पहुंची, राजा मान ने अपनी रङ्गीन भाषा में अपनी ओर से नोन मिर्च लगा कर बादशाह अकबर के कान खूब भरे। अकबर की क्रोधाग्नि मान के अपमान को सुनकर भड़क उठी। जो *अकबर एक समय राजा मानसिंह को ज़हरीले लड्डू खिला कर मारना चाहते थे। वह आज मान के मानकी मरम्मत करने के लिये प्रताप पर आक्र-मण करने की तैयारी करने लगे।

* बूंदी के काग़ज़ पत्रों से पता लगता है कि जब मानसिंह अपने भाञ्जे खुसरु को दिल्लीके राज सिंहासन पर बिठलाना चाहते थे तब उस समय अकबरने उनको मारने के लिये विषैले लड्डू तैयार कराये थे Tod Rajasthan Vol II—लेखक।

ग्यारहवां परिच्छेद

रणचंडी का नाच

"अरे ओ ! सिंदूरा बजाओ २ नगारे पै चोंबे लगाओ लगाओ।
चतुरंग सेना बुलाओ २ ध्वजा औ पताका उड़ाओ उड़ाओ॥
रथी सारथी वीर धाओ सिधाओ चकाबू रचो शीघ्र सेना सजाओ
अभी मोरचे जा जमाओ २ जंबूरे सितावी चलाओ चलाओ॥
निशाने पै तोपें लगाओ २ गनीमों के धुर्रे उड़ाओ उड़ाओ।
करावीन ले बाण दागों दगाओ उखाड़ो पुखाड़ो गिराओ भगाओ॥
कटारी छुरी बाणबर्छी सम्हारो भर रक्त का सिंधु खांड़ा पखारो।
जहां शत्रु पाओ तहां पीस डारो पुकारो राणा*प्रताप की जै पुकारो
—ला० श्रीनिवासदास"

अकबर का उस समय सौभाग्य सितारा बुलन्दी पर था एक से एक बढ़कर वीर पुरुष उसके दरबार में थे भगवान रामचन्द्र जी के साथ केवल एक विभीषण लङ्का की स्वाधीनता नष्ट कराने वाला था। अकबर के दरबार में घर का भेदी, लङ्का ढावे बहुत से विभीषण इकट्ठे होगये थे। बाहर के वैरी की अपेक्षा घर की फूट बहुत बुरी होती है। जिस जगह यह पैशाचिनी फूट पहुंचती है। उसी का सत्यानाश करके छोड़ती है। पाठक ! हृदय थाम कर कड़ा कलेजा करके सुनो, इस चाण्डालिनी फूट ने क्या नहीं कराया है। चाण्डालिनी व पैशाचिनी फूट ! तुझे हम क्या कह कर सम्बोधन करें ? तूने

* मूलपद्य में राणा प्रताप के स्थान में पृथ्वीराज शब्द है। —लेखक

इस संसार में क्या नहीं कराया है। मन्थरा बन कर तूने रानी कैकयी को बहकाया जिससे बेचारे राजकुमार रामचन्द्र को वन में कठोर क्लेश सहन करने पड़े, विभीषण बन कर तूने सुवर्णपुरी लङ्का को मिट्टी में मिलवा दिया, दुष्ट दुर्योधन बनकर तूने इस स्वर्ग तुल्य भारतभूमि को श्मशान भूमि बना दिया। पामर जयचन्द्र बनकर रत्न-गर्भा भारत-माता के हाथ पैर पराधीनता की जञ्जीर में जकड़वा दिया अब तू शक्तसिंह, सागरजी आदि के रूप में दिल्लीश्वर के दरबार में पहुंच गई जिससे मेवाड़ का सत्यानाश हुआ इसी लिये कहते हैं कि तुझे किस नाम से सम्बोधन करें। पिशाचिनी तेरी कपट नीति से कोई नहीं बच सकता है। जो एक बार तेरे विषकुम्भ सुखोपम फल को चख लेता है। वह फिर तुझसे कभी प्रीति नहीं छोडता है। तू उसे सांपिनी की तरह डस जाती है। अरे चाण्डालिनी! अब तो इस वृद्धा भारत-माता पर अज्ञानता के भयानक और डरावने बादल हटाले। बस, बहुत हो चुका अबतो इस से दूर रह।

राजा मानसिंह का अपमान अकबर के लिये अच्छा ही हुआ। मानो भभकती हुई अग्नि में घी की एक आहुति छोड़ी गई। अकबर पहले से ही प्रताप को अपने अधीन करना चाहते थे मानसिंह के अपमान का उन्हें एक और बहाना मिला। अपने दुलारे युद्धमन्त्री मानसिंह का अपमान उन्होंने अपना ही अपमान समझा। जैसे क्रोधित सर्प फुफकार मारा करता था वैसे ही वे भी मानसिंह के अपमान के कारण अपने लोगों को मेवाड़ पर चढ़ाई करने के लिये उत्तेजित करने लगे। अभाग्यवश- अकबर के दरबार में महाराणा प्रतापसिंह के

टे भाई शक्तसिंह थे। प्रतापसिंह के वैमातृज भाई सागर
शाही दरबार में थे उन सब से बादशाह ने अपने मोहिनी
त्र के बल से प्रताप के यहां की एक एक करके सभी बातें
न लीं। अपने प्रतिद्वन्दी प्रताप के सभी भेद जानकर बाद-
ह मेवाड़ पर चढ़ाई करने का प्रबन्ध सोचने। अकबर को
स बात की बहुत चिन्ता थी कि सभी राजपूतों ने मेरे सामने
र नवा दिया है पर अभी तक प्रतापसिंह अपनी टेक क्यों
े हुये हैं।

अकबर के पास प्रतापसिंह की स्वाधीनता नष्ट करने के
सभी साधन उपस्थित थे। पर बेचारे प्रताप के पास
पनी स्वाधीनता अक्षुण्ण रखने के लिये क्या था? प्रताप के
स न तो मुग़ल सेना के समान विशाल सेना थी, न धनबल
ा और न उनके पास राजपूत कुल कलङ्कों की भांति घर के
दी लङ्का डाहने वाले विभीषण मुग़ल थे। पर था उनके पास
ातृभूमि के उद्धार करने का उत्साह, देशभक्ति और धर्म। प्रेम
श अपने इस हृदय के बल के कारण ही प्रताप अपनी मुट्ठी
र सेना के साथ समुद्रवत् बादशाही सेना का सामना
रने को तैयार हुये। जिस दिन मानसिंह अभिमान पूर्वक
ोजन के थाल पर से उठ गये थे उसी दिन प्रताप ने समझ
लिया था कि किसी न किसी दिन रणचण्डी का नाच हुये
बिना नहीं रहेगा। वे निश्चिन्त नहीं थे। उन्होंने अपने सर-
दारों को वीर राजपूतों से परामर्श लिया तब सबने एक स्वर
से कहा कि प्राण रहते हम कभी आपका साथ नहीं छोड़ेंगे।
महाराणा अपने इन सरदारों और राजपूत वीरों के भरोसे
ही अपनी जन्मभूमि की स्वाधीनता की रक्षा करने के लिये

तैयार हुये जिसके कारण वह अमर होगये। जब तक संसार है तब तक बड़े आदर के साथ प्रताप का नाम लिया जायगा।

प्रताप अपनी कुछ राजपूत सेना के साथ पहाड़ी प्रदेश में रहते थे। उनकी राजधानी कुम्भलमेर उदयपुर के पश्चिम ओर थी, उसकी लम्बाई चौड़ाई दोनों ओर चालीस कोस थी। चारों ओर वह स्थान पर्वत से परिवेष्टित था। पर्वत-माला शहर पनाह का काम दे रही थी। बीच बीच में कहीं छोटे छोटे पानी के झरने अपनी अनुपम शोभा को दिखला रहे थे। कहीं कहीं बीच में पर्वत और घना जङ्गल उस शोभा को और भी बढ़ा रहे थे। उस स्थान की इस प्राकृतिक शोभा देखने योग्यही थी। उदयपुर को इस दुर्गम पहाड़ी प्रदेशका मध्य स्थल कहते हैं। उदयपुर के जिस ओर होकर वहां जाना पड़ता है, वह बहुत दुर्गम और तङ्ग पहाड़ी रास्ता है। उस दुर्गमस्थान पर खड़े होकर जिधर निगाह डालियेगा, उस तरफ़ ही पर्वत श्रेणी और हरे हरे वृक्षों के सिवाय और कुछ दिखलायी नहीं पड़ता है। कुम्भलमेर के इस निकटवर्त्ती स्थान को ही हल्दीघाटी कहते हैं। अजमेर प्रभृति स्थानों से मुग़ल सेना इस मार्ग से पहाड़ी प्रदेश में आवेगी, यह विचार कर उसे रोकने के लिये प्रताप अपनी सेना को हल्दी घाटी की ओर लेचले। हल्दीघाटी के आस पास के स्थानों में से प्रताप के बाइस हज़ार बहादुर अपनी मातृभूमि के लिये शोणित तर्पण करने के लिये इकट्ठे हुये।

राजपूताने के उस कठिन पहाड़ी प्रदेश में भील आदि कई पहाड़ी असभ्य जातियां रहती हैं। भील राजपूताने के आदि निवासी हैं। मेवाड़ प्रदेश के पहाड़ी स्थानों में भील राजपूताने

भर से अधिक मिलते हैं। राजपूतों ने भीलों को पहाड़ों में भगा कर उनके देश पर आधिपत्य जमा लिया है। 'सब से भले मूद, जिन्हें न व्यापै जगत गति।' भील लोग अवश्य ही ऐसे हैं परन्तु चाहे वे असभ्य हों, पर उनकी अपने महाराणा के प्रति अटल भक्ति होती है। अवश्य ही वे प्लेटफ़ार्म पर खड़े हो कर गला फाड़ कर अथवा अखबारों में कलम कुठारा चला कर ही अपनी राजभक्ति की सीमा समाप्त नहीं कर देते हैं पर वे महाराणा पर विपत्ति आते ही अपनी राज और देशभक्ति का ऐसा अनुपम परिचय देते हैं, जो शायद संसार के अन्य देशों में मिलना कठिन हो। भील जाति अब भी स्वाधीन भाव से शान्ति पूर्वक रहती है।

महाराणा प्रतापसिंह को भील जाति ने समय समय पर खूब सहायता दी थी, जिस समय बाईस हज़ार राजपूत अपनी जन्मभूमि के गौरव की रक्षा के लिये समर रूपी यज्ञ में अपने प्राणों की आहुती देने के लिये इकट्ठे हुये थे, उस समय भील वीरों ने भी राणा प्रताप का साथ दिया था। राजभक्ति और देशभक्ति की डींग हांकने वालो! एक बार अपनी कल्पना रूपी आंखों से देखो तो सही मेवाड़ की स्वाधीनता की रक्षा के लिये अगणित जङ्गली भील अपनी तीर कमान लेकर इकट्ठे हुये थे। अपने महाराणा की प्रतिष्ठा को स्थिर रखने के लिये असंख्य भील पत्थर लेकर चारों ओर पहाड़ों पर बैठ गये। मुग़ल सेना पर लुढ़काने के लिये पत्थरों के टुकड़ों के ढेर के ढेर जमा कर लिये थे।

बादशाही सेना भी मेवाड़ के गौरव और महाराणा प्रताप की स्वाधीनता नष्ट करने के लिये चलने लगी। अकबर ने युद्ध

सचिव मानसिंह, महाराणा प्रतापसिंह के छोटे भाई शक्तसिंह और उनके दूसरे भाई सागर जी, सागर जी के पुत्र महावतखां आदि के साथ एक विशाल सेना भेजी, उस विशाल सेना का नायक अपने जेष्ठ पुत्र, युवराज सलीम को बनाया। संवत् के ग्रीष्म ऋतु के आरम्भ में बादशाही सेना* शाहजादा सलीम की अध्यक्षता में मेवाड़ पर धावा करने के लिये रवाना हुई।

---

* सलीम इस युद्ध में गया था कि नहीं, इसमें सन्देह है मुसलमानी इतिहासों के प्रसिद्ध ज्ञाता, जोधपुर के मुन्शी देवीप्रसाद जी लिखते हैं :—"शाहज़ादह सलीम की आयु इस समय ६ वर्ष की थी, इसलिये इस समय वह बादशाही सेना के अफ़सर होकर मेवाड़ में नहीं आ सकते थे"। तुहफ़ाए राजस्थान के लेखक ने भी ऐसा ही लिखा है। युवराज सलीम का जन्म १५६६ में जोधपुर राजकुमारी के गर्भ से हुआ था। इस हिसाब से हल्दीघाटी के युद्ध के समय जो संवत् १६३२ अर्थात् सन् १५७६ ई० में हुआ था सलीम की आयु ७—८ साल से अधिक नहीं हो सकती है। लेकिन टाड साहब ने सलीम को हल्दीघाटी के युद्ध का नेता लिखा है। हो सकता है कि अकबर ने हल्दीघाटी की विजय का सेहरा सलीम के सिर पर बांधने के लिये उसे वहां भेज दिया हो। सम्भवतः १०—१५ वर्ष पीछे जब प्रताप के साथ फिर भीषण युद्ध हुआ, उस समय सलीम युद्ध के नेता रहे हों। "आईने अकबर" प्रभृति ग्रन्थों में इसका कुछ भी पता नहीं लगता है। निज़ामी कृत "तबकाते अकबरी" और बदाऊनी कृत "मुन्तख़बुत्तारीख़" ग्रन्थ में मानसिंह के सेनापति होने की बात लिखी है। उनमें सलीम का नाम भी नहीं है। Badauni Vol. II. P. 228. Elliol's History Vol. P. 397. Elphinstone P. 506—बदाऊनी स्वयं इस लड़ाई के मैदान में मौजूद था। उसने इस युद्ध का विवरण बहुत बड़ा लिखा है। उसने लिखा है कि मानसिंह ने अपनी विजय का हाल अकबर को लिखा। अकबर ने मानसिंह और उनके अमीरों को इनाम अकराम दिया। बदाऊनी के विवरण में भी सलीम का नाम नहीं है।—लेखक।

मुग़ल सेना—प्रताप की सेना से कहीं अधिक थी, मुग़ल सेना ने आरम्भ से ही एक चालाकी चली कि अपनी सेना बहुत से स्थानों में फैला दी कि जिससे प्रतापसिंह को पता ही न लगे कि मुग़ल सेना कितनी है? किन्तु मुग़ल सेना की यह चालाकी चल न सकी, प्रताप के जासूसों ने मुग़ल सेना के आने की खबर की, मुग़ल सेना समझती थी कि प्रताप पर्वत कन्दरा परित्याग करके खुले मैदान में बादशाही सेना पर आक्रमण करेंगे। किन्तु स्वदेशभक्त प्रताप ने ऐसा नहीं किया। मुग़ल सेना ने देखा कि प्रताप युद्ध के लिये मैदान में नहीं आये। वे पहाड़ों में से ही युद्ध करने को तय्यार हुये। तब तो वह देशद्रोही, कुलद्रोही मानसिंह की सलाह से आगे बढ़ने लगी।

श्रावण मास के सातवें दिन रण चण्डी का विकट नृत्य आरम्भ हुआ। हल्दीघाटी के पवित्र क्षेत्र में स्वदेश की स्वाधीनता के निमित्त अगणित राजपूतों के खून की नदी बहने लगी। राजपूत लोग जन्मभूमि की रक्षा के लिये अपना खून बहा कर ही चुप नहीं हुए, किन्तु उन्होंने मुग़ल सेना के अनेक वीरों का सिर तन से जुदा कर दिया हल्दीघाटी का युद्ध सामान्य नहीं था, वह युद्ध बड़ा विकट था। स्वदेश रक्षा के निमित्त एक ग्रीस देश को छोड़ कर और कहीं भी वैसा युद्ध हुआ है या नहीं इसमें सन्देह है। एक ओर प्रचण्ड मुग़ल सेना समुद्र के समान आगे बढ़ने लगी, दूसरी ओर से महाबली राजपूत उस सेना की गति रोकने के लिये आगे बढ़े। मानों दो मत्त हाथियों का मल्लयुद्ध होने लगा। उसी तङ्ग घाटी में जहां आदमियों को मार्ग मिलना कठिन होता था, वहां अगणित हिन्दू, मुसलमान एक दूसरे को मारने,

फाड़ने, चीरने के लिये छाती फैला कर खड़े हुए थे। जहां तक दृष्टि पहुंचती थी वहां तक नरमुण्ड ही नरमुण्ड दिखलायी पड़ते थे।

पाठक! एक बार अपनी कल्पना शक्ति से देखो कि कैसा भयङ्कर युद्ध था। तूफ़ान उठने से पहले समुद्र निश्चल शान्त और गम्भीर होता है, परन्तु तूफान के आते ही समुद्र की लहरें भयङ्कर रूप धारण करलेती हैं समुद्र की लहरें कूदती, उछलती, नाचती हुई आकाश से बातें करना चाहती हैं, ठीक वैसी ही गति दोनों ओर की सेना की हुई। क्षण भरके लिये दोनों सेनाओं के वीरोंने एक दूसरे को स्थिर निश्चल और गम्भीर भाव से देखा। परन्तु बीणबाजे की उन्मादिनी ध्वनि से पहाड़ बन, पशु पक्षी सभी कांप उठे। बाजे की उस उन्मादिनी ध्वनि से हाथी, घोड़े पैदल सब ही युद्ध के लिये उन्मत्त हो गये। दोनों दल एक दूसरे पर टूट पड़े। मुसलमान दलकी ओर से "दीन, दीन अहक" नाद सुनाई पड़ने लगा। राजपूत-सेना के "हर हर महादेव" शब्द की ध्वनि से आकाश प्रतिध्वनित होने लगा। राजपूत वीर मुग़ल सेनापर, जैसे भूखा सिंह हरिणों के झुण्ड पर झपटता है, वैसेही टूट पड़े। मुग़ल सेना राजपूतों का साहस, बल और आत्मत्याग देख कर चकित और स्तम्भित हुई। मेवाड़ भूमि की स्वाधीनता को बचाने के लिये राजपूतों ने अपने प्राण पण से युद्ध किया। वीर वर प्रतापसिंह भी निश्चिन्त नहीं थे। वे निडर होकर सबके आगे थे और शत्रुओं का सैनिक बल नष्ट कर देना चाहते थे उन्हें इसमें सफलता भी हुई। उन्होंने अपने असाधारण साहस से मुग़ल सेना का चक्र व्यूह तोड़ दिया।

प्रताप का साहस और युद्ध कौशल देखकर राजपूत और भी उत्साह के साथ लड़ने लगे। जिस तरह से भूखा व्याघ्र बड़े बड़े हाथियों को क्षण भर में चीर डालता है, वैसे ही अकेले प्रताप ने असंख्य मुग़लवीरों को तलवार से काट डाला। राजा मानसिंह से कहा था कि मैं युद्ध में आपको देखकर प्रसन्न होऊंगा। बस, वे इस युद्धस्थल में मानसिंह को ढूंढ़ने लगे पर कहीं मानसिंह का पता नहीं लगा। वे दो बार वैरियों की सेना में पहुंच गये पर कहीं भी मानसिंह का पता न लगा। मानसिंह प्रताप की रुद्र मूर्ति से भयभीत होकर नौकरों की भीड़ में अपनी रक्षा कर रहे थे। दूसरी बार प्रताप मानसिंह को ढूंढ़ते ढूंढ़ते बहुत सी मुग़ल सेना के बीच में पहुंच गये। किन्तु राजपूत वीरगण भी निश्चिन्त नहीं थे। उन्होंने प्राणों की बाजी लगाकर अपने महाराणा की रक्षा की। सैकड़ों राजपूतों ने अपने महाराणा की जीवन रक्षा के लिये सहर्ष प्राणों का विसर्जन कर दिया। भील लोग भी शान्त नहीं थे। उन्होंने वृक्षों की ओट में से तीरों से, पत्थरों से मुग़ल सेना के सैकड़ों वीरों के सिर चकनाचूर कर दिये। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ।

---:o:---

बारहवां परिच्छेद

झाला सरदार का आत्म त्याग

मित्र परीच्छहु में कियो सरनागत प्रतिपाल।
निरमल जस सिवि सो लियो तुम या काल कराल॥
—हरिश्चन्द्र

दो चार मुग़ल सेना के बीच में पहुंच कर और मानसिंह को न पाकर प्रताप निश्चिन्त नहीं हुये उनकी अन्तर्व्यापिनी प्रचण्ड अग्नि अभी नहीं बुझी थी वे देशद्रोही कुलकलङ्क मानसिंह को इस समय भी मत्त सिंह की तरह खोजते थे। नर केसरी प्रताप युद्धक्षेत्र में चारों ओर आंखें गड़ाये हुए देख रहे थे कि देश द्रोही भीषण वैरी मानसिंह कहां है? उस समय प्रताप अपने चेतक घोड़े पर सवार थे, वास्तव में चेतक घोड़ा प्रताप के योग्य ही था। जैसे प्रताप वीर थे, वैसा ही उनका घोड़ा भी वीर था। जैसे प्रताप रण निपुण थे, वैसा ही चेतक भी रण निपुण था। उसी चेतक पर सवार, निडरवीर वर प्रताप राजा मानसिंह की खोज में घूम रहे थे। बालक जैसे खेल में मट्टी के खिलौनों को उखाड़ पछाड़ कर फेंक देते हैं, वैसे ही मानसिंह की खोज में प्रताप मुग़ल सेना के अनेक वीरों के टुकड़े टुकड़े कर रहे थे, उनकी रण दक्षता देख कर मुग़ल सेना अवाक् रह गई, किन्तु प्रताप को कहीं भी मानसिंह दिखलायी न पड़े। अपने बीच में मुग़ल वीर प्रताप को देख कर उनको मारडालने की चेष्टा करने

लगे, प्रताप के एक एक करके देह रक्षक भूमि शायी हुये, पर प्रताप को इसकी कुछ परवाह न हुई, वे अकेले ही मुग़ल वीरों का सामना करते हुये, देशद्रोही मानसिंह को ढूंढने लगे।

मानसिंह का तो कहीं पता नहीं लगा, पर सामने ही वे क्या देखते हैं कि अकबर का युवराज सलीम हाथी पर सेना के बीच में है। मानसिंह न सही, सलीम ही सही यह सोच कर अपने घोड़े के एड़ लगाई घोड़ा भी अपने स्वामी के इशारे से आगे बढ़ा। उनको आगे बढ़ते देख कर चारों ओर मुग़ल सिपाही युवराज की रक्षा के लिये जमा होने लगे और उन्होंने मिल कर प्रताप पर आक्रमण किया, परन्तु प्रताप की वीरता के सामने मुग़ल सैनिकों का आक्रमण व्यर्थ हुआ। किन्तु प्रताप ने इसका कुछ ख्याल नहीं किया। स्वदेश के लिये उस युद्ध में प्राण त्याग मानों उनका सिद्धान्त था। उन्होंने दूरसे सलीम पर तेज़ बर्छा चलाया दैवयोग से वह बर्छा सलीम के लोहे के हौदे से टकराकर व्यर्थ हुआ। तब प्रताप ने सलीम की ओर अपना घोड़ा बढ़ाया अपने स्वामी का अभिप्राय समझ कर चेतक एक छलांग मार कर सलीम के हाथी के निकट पहुंच गया। तेजस्वी चेतक ने हाथी के माथे पर टाप जमा दी। ऐरावत के समान उस महागज के माथे पर उच्चैश्रवा की भांति चेतक का पैर शोभायमान होने लगा। प्रताप की इस रण निपुणता को देखकर थोड़ी देर के लिये वीरमण्डली अवाक् रह गई उनके शत्रु भी उनके इस साहस की प्रशंसा करने लगे। इस अवसर पर प्रतापसिंह एक क्षण के लिये भी नहीं ठहरे उन्होंने मुहूर्त मात्र का विलंब

करना भी उचित नहीं समझा। उन्होंने सलीम को मारने के लिये तलवार चलाई वह तलवार सलीम के हौदे से फिर टकराई, पर इस बार खाली नहीं गयी हौदे से उछल कर महावत के लगी। तलवार के आघात से बेचारा महावत पृथिवी पर आगया। बिना महावत का हाथी युवराज सलीम को लेकर भाग गया, यदि हाथी न भागता तो अकबर की आंखों का प्रदीप यहीं बुझ जाता। दैव कृपा से ही अकबर के युवराज सलीम की रक्षा हुई।

युवराज सलीम को इस तरह से विपत्ति में फंस कर मुग़ल सेना पागल हो उठी सब की सब सेना वीर प्रताप के प्राणों की ग्राहक बन बैठी मुग़ल सेना ने चारों ओर से प्रताप को घेर लिया। प्रताप ने भीम विक्रम से अनेक शत्रुओं को मार गिराया। पर अकेले प्रताप को देखकर मुग़ल सेना का जोश ठंडा नहीं पड़ा। जिस तरह से समुद्र की तरङ्गें पहाड़ से पहली बार टक्कर खाकर दूसरी बार और भी ज़ोर से टक्कर खाती हैं उसी तरह से मुग़ल सेना पहिले से अधिक ज़ोर के साथ प्रतापसिंह पर टूटी। अकेले प्रताप और मुग़ल सेना के असंख्य वीर, कैसा भयङ्कर युद्ध है। अब प्रताप की कौन रक्षा करेगा। अकेला वीर इतनी विशाल सेना से कब तक लड़ेगा। यह चिन्ता सबके चित्त को डांवां डोल करने लगी। सभीको प्रतापसिंह के जीवन की चिन्ता हुई असंख्य मुग़ल वीरों से घिरने के अतिरिक्त उनके शरीर पर तीन बर्छी के तीन तलवार के और एक गोली का आघात लग चुका था इतने में ही "जय प्रताप की जय" शब्द सुनाई पड़ा। यह शब्द सुनते ही प्रताप पहले से और भी अधिक उत्साह के साथ

लड़ने लगे। इतने में ही सावड़ी के झाला सरदार मन्ना प्रताप सिंह जी के पास पहुंच गये। उनके ऊपर से राजछत्र चंवर हटवाकर अपने ऊपर लगवा लिया। मुगल सेना ने झाला सरदार मन्ना को ही महाराणा प्रताप समझा वह प्रताप को छोड़ कर चारों ओर से* झाला सरदार मन्ना पर टूट पड़ी। झाला सरदार मन्ना अनेक मुगल सैनिकों को यमलोक पहुंचा कर मुगल सेना के हाथ से मारा गया जिससे महाराणा प्रताप के जीवन की रक्षा हुई। धन्य! झाला सरदार!! धन्य!!! तुम्हारे जैसे आत्मत्यागियों के कारण ही मेवाड़ के गौरव की रक्षा उस कठिन काल में हुई थी।

प्रताप झालामन्ना के आत्मत्याग को भूले नहीं। उसी दिन झालामन्ना के वंशधरों को राज चिन्ह सहित, महाराणा की दाहिनी ओर बैठने तथा महलों तक नक्कारा बजाते हुए आने और राजकीय झण्डा अपने साथ रखने का अधिकार मिला। उन्हें सादि देश में जमीन दीगई।

*भारतवर्ष के इतिहास में और भी इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं एक युद्ध में बाजीराव प्रभु पांडे ने शिवाजी की भी इस तरह से रक्षा की थी। जब तक शिवाजी दूसरे दुर्ग में नहीं पहुंच गये तब तक वह बराबर रणक्षेत्र में लड़ता रहा और अन्त में शिवाजी की रक्षा के लिये अपने प्राणों की आहुति दी—लेखक

तेरहवां परिच्छेद

विजय या पराजय

"मरना भला है उसका जो जीता है अपने लिये
जीता है वह जो मर चुका स्वदेश के लिये।"

हल्दी घाटी के महासंग्राम में बाईस हजार राजपूत वीरों में से चौदह हज़ार वीरों ने मातृ-भूमि के गौरव की रक्षा के लिये हंसते हंसते प्राण प्यारी के समान मृत्युका आलिङ्गन किया। प्रताप के आत्मीय जन ही लगभग पांच सौ थे। ग्वालियर के राज्यच्युत, राजा साहब भी महाराणा के आश्रय में मेवाड़ में रहते थे, वे अपने लड़के खण्डेराव और तुमार-वंशीय कोई साढे तीन सौ योद्धाओं के सहित मारे गये थे। झाला सरदार-मानसिंह अपने डेढ़सौ आदमियों सहित प्रताप के जीवन की रक्षा करतेसमय मारे गये। प्रताप ने देखा कि इस तरह से और भी राजपूत मारे गये, सन्ध्या हो चली थी, तब वे युद्ध सम्बन्धी कई प्रयोजनीय आज्ञाएं देकर दुःखित मनसे रणस्थल से हटे। हल्दी घाटी का युद्ध समाप्त हुआ, मानसिंह की मनोकामना पूर्ण हुई।

सोचो पाठक! सोचो!! इस युद्ध में प्रतापसिंह की जय हुई अथवा पराजय, यह सच है कि प्रताप के असंख्यवीर मारे गये। मुगल सेना युद्धस्थल से हटी नहीं। प्रताप रण-स्थल से चले आये। परन्तु हमारी समझ में इतने पर भी प्रताप की पराजय नहीं हुई, उनकी चिरस्मरणीय विजय हुई,

आप कहेंगे सो कैसे ? सुनो ! मुग़ल सम्राट और मुग़ल सेना अपने साम्राज्य का विस्तार करने के लिये लड़ रहे थे, राणा प्रताप और राजपूत जाति अपने देश के गौरव की रक्षा के लिये, राजपूत जाति की स्वाधीनता के लिये लड़ रहे थे। राजपूत जाति की लड़ाई सिद्धान्त विषयक थी, मुग़लों की अपने स्वार्थ की थी। जो लोग सिद्धान्त विषयक देश की मान मर्यादा और गौरव की रक्षा के लिये लड़ते हैं वे कभी हार जीत का विचार नहीं करते हैं। उनकी हार भी लाख जीतों से बढ़कर होती है। यदि उनकी हार जीत से बढ़कर न होती तो आज ऐसे लोगों को कौन स्मरण करता ? उनकी हार जीत से बढ़कर मनुष्यों के हृदयों पर मानसिक प्रभाव डालने वाली न होती तो कौन उनके नाम की पूजा करता। जब ऐसी हार में जीत से कहीं अधिक शक्ति है, तब हम कैसे इस को पराजय कहें ? हल्दी घाटी के महा संग्राम में मुग़ल सेना से राजपूत अपनी अतुलनीय वीरता का परिचय देकर क्षण-मात्र के लिये हट अवश्य गये, जब तक संसार है वे देश भक्तों के हृदय मन्दिर से हट नहीं सकते, उनका नाम सदैव को अमर होगया है। स्मरण रक्खो ! यदि गौरववृद्धि और अमरतत्व लाभ ही विजय के चिन्ह हैं, तो राजपूत पराजित नहीं हुए। राजपूतों की विजय हुई। संसार के किसी इतिहास में हल्दीघाटी के युद्ध के समान पराजय, पराजय नहीं गिनी गई है, वह पराजय विजय से बढ़कर समझी गई है। यदि ऐसा न होता तो यूनान देश थर्म्मापली के सङ्कीर्ण पर्वत गुफा में महावीर लियोनिडाज़ के अधीन, जिन थोड़ेसे योद्धाओं ने फ़ारस के बादशाह की विशाल सेना के प्रवेश पथ में पहुंच

कर आत्मबलि दी थी, उनकी कीर्त्ति कथा का कदापि इतिहास लेखक बखान न करते। धर्म्मापली के युद्ध के समान हो हल्दी घाटी में चौदह हज़ार राजपूत देश के लिये मर कर अपनी कीर्ति अमर कर गये। तब कैसे कहें कि इस युद्ध में राजपूतों की पराजय हुई।

चौदहवां परिच्छेद

बन्धु मिलन

*किं मे भ्रातृ विहीनस्य स्वर्गेण सुरसत्तमाः ।
यत्र ते मम स स्वर्गो नायं स्वर्गो मतो मम" ॥

"राजीवलोचन स्रवत जल तनु ललित पुलकावलि बनी ।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहिं मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ॥
प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो पहँ जाति नहिं उपमा कही ।
जनु प्रेम अरु श्रृङ्गार तनु धरि मिलत बर सुखमा लही ।"

गो० तुलसीदास ।

महाभारत में एक कथा है कि महाभारत के युद्ध के पीछे जिस समय धर्मराज युधिष्ठिर स्वर्ग में पहुंचे, उस समय वे वहां अपने भाइयों और द्रौपदी को न पाकर, कहने लगे कि मुझे ऐसा स्वर्ग न चाहिये, जहां मेरे भाई और द्रौपदी न हों, भाइयों और द्रौपदी से शून्य स्वर्ग भी मेरे लिये नरक है, और वह नर्क जहाँ मेरे भाई हैं स्वर्ग से भी बढ़कर है। वास्तव में भ्रातृ प्रेम ऐसा ही होता है। भारतवर्ष के दुर्भाग्य वश, आज भाई, भाई में प्रेम की पारस्परिक, निर्मल, शुद्ध धारा नहीं बह रही है, यदि भाई, भाई का प्रेम प्रवाह न सूखता तो कदापि इस देश की ऐसी अधोगति न होती, एक दिन भारतवर्ष में, भाइयों में प्रेम का अखण्ड राज्य था।

---

* भाइयों से विहीन इस स्वर्ग को लेकर मैं क्या करूं ? ऐसा स्वर्ग मुझे नहीं चाहिये, वे जहां होंगे, वहीं मेरा स्वर्ग है"।

परन्तु वह बातही आज नहीं। पर यह देखने में आया है, चाहे भाई, २ के प्रेम भाव न हो पर जब कभी किसी भाई पर आपत्ति आती है तो खून का असर दूसरे भाई पर भी हुए बिना नहीं रहता है। नित्य प्रति ऐसी घटनाएँ देखने में आती हैं। इस हल्दी घाटी के युद्ध में भी ऐसीही एक घटना हुई।

रणभूमि से निकलकर प्रताप अपने चेतक घोड़े पर अकेलेही चले। उस समय वे बहुत थके हुए थे उनका शरीर क्षत विक्षत होरहा था, उनके प्यारे घोड़े चेतक की भी ऐसी ही दशा होरही थी। परन्तु उस दशा में भी चेतक अपने स्वामी को लेकर बड़े वेग से जारहा था। प्रताप को जाते देख कर उनके पीछे दो मुग़ल सिपाही भी दौड़े जिनमें एक का नाम खरासानी और दूसरे का नाम मुलतानी था। प्रताप प्रथम तो समस्त दिन युद्ध में व्यस्त रहने के कारणही थके हुए थे, दूसरे युद्ध का फल और स्वदेश की चिन्ता के कारण दुःख सागर में डूबे हुए थे। उन्हें अपने पीछे मुग़ल सवारों के आने की कुछ खबर नहीं हुई। जिस मार्ग से प्रताप जा रहे थे उस मार्ग के बीच में नाला था, चेतक छलांग भर कर नाले को पार कर गया, परन्तु उन दोनों मुग़ल सवारों का घोड़ा नाला पार नहीं कर सका। कुछ आगे बढ़ने पर प्रताप ने अपनी स्वदेशी भाषा में एक आवाज़ सुनी "हो नीला घोड़ारा सवार हो"। इस आवाज़ के सुनतेही प्रताप ने पीछे की ओर फिर कर देखा तो मालूम हुआ कि दोनों मुसलमान सवारों को मारकर, तीर की भांति उनका भाई शक्त सिंह उनके पीछे लपक रहा है। प्रताप, धीर गम्भीर स्थिर भाव में खड़े होगये, सोचने लगे कि मुझे मारकर शक्तसिंह अपनी

पूर्व-प्रतिज्ञा को पूर्ण किया चाहता है, नहीं तो उन दोनों मुग़ल सवारों के मारने की क्या आवश्यकता थी ? मनही मन कहने लगेः—"आओ शक्त ! आओ !! मुझे मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करो, जो कुलाङ्गार नराधम, युद्धस्थल से मुख मोड़ता हो उसकी यही दशा होनी चाहिये ।"

यह पहले लिखा जा चुका है कि शक्तसिंह और प्रताप सिंह का आपस में झगड़ा हो चुका था । इसलिये शक्तसिंह प्रताप को छोड़ कर अकबर से जा मिले थे, वे भी मुग़ल सेना के साथ साथ हल्दी घाटी के युद्ध में आये थे । उन्होंने हल्दी घाटी के युद्ध में भाई का पराक्रम देखा । देखा अनेक स्वजातीय को देश के लिये मरते हुये, देखा अपने जेष्ट भ्राता और स्वदेश वासियों की देशभक्ति और वीरता । यह सब देखकर उनके हृदय में अपने भाई के प्रति भक्ति होगई । उन्होंने जिस समय देखा कि दो मुग़ल सवार भाई के पीछे जा रहे हैं, उस समय वे अपने भाई के प्रति समस्त द्वेषभाव को भूल गये—उस समय उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर की उस नीति का अवलम्बन किया जो उन्होंने चित्र सेन गन्धर्व द्वारा पकड़ने पर घोषणा की थी :—

"ते शतं हि वयं पंच परस्पर विवादने ।
परैस्तु विग्रहे प्राप्ते वयं पंचाधिकं शतं ॥

आपस के झगड़े होने पर कौरव सौ और हम पांच हैं, पर दूसरे के मुकाबिले में हम एक सौ पांच हैं ! मुग़ल सवारों को जाते देख कर शक्तसिंह सोचने लगे कि जिस प्रताप ने राजपूत जाति के गौरव को अमिट रक्खा है, उसी मेरे भाई प्रताप की ये मुग़ल सवार हत्या करने जाते हैं.बस, यह सोच,

कर मुग़ल सवारों को मारकर प्रतापसिंह के जीवन की रक्षा की। इसके पीछे भाई को ठहराया और उनसे जाकर मिले।

वह बड़ा सुन्दर समय था, जब मुद्दत से बिछुड़े हुये दोनों भाई—एक दूसरे के गले मिले। शक्तसिंह ने अपने के चरणों में सिर रख कर, पहले अपराधों की क्ष
प्रताप ने सजल नयन से भाई को गले लगाया।
प्रताप ने हल्दी घाटी की पराजय भूल गये
घाटी पर विजय लाभ किया था, प्रताप ने
हृदय साम्राज्य पर अधिकार प्राप्त किया
उनके हृदय में अद्भुत आनन्द का सञ्चार
और भरत बहुत दिन पीछे मिले।

इस घटना के पीछे शक्त वहां बहुत देर नहीं ठहरे, उन्होंने अपना घोड़ा जिसका नाम अङ्गारा था प्रताप को दे दिया प्रताप उस पर सवार हो कर चल दिये और शक्तसिंह उनको यह कह कर कि सुविधा होने पर फिर मिलूंगा। मुग़ल शिविर की ओर लौट दिये।

शक्तिसिंह ने जिन दो सवारों को मारा था, उनमें से वे खुरासानी के घोड़े पर सवार हो कर वापिस आये। युवराज सलीम ने उनको खुरासानी घोड़े पर आने का कारण पूछा, पहले शक्तसिंह ने असली भेद को छुपाना चाहा, परन्तु सलीम ने समस्त अपराधों को क्षमा करने की प्रतिज्ञा की और असली हाल कहने के लिये शक्तसिंह से आग्रह किया। तब तो उन्होंने ब्यौरेवार सब हाल कह सुनाया और कहा :— "युवराज! विशाल राज्य का भार मेरे बड़े भाई पर है, उन पर विपत्ति आवे और मैं चुप बैठा रहूं, यह कैसे हो सकता है? खुरासानी और मुलतानी दोनों को मैंने ही मारा है" भाई के घोड़े के मरने पर अपना घोड़ा, मैंने उन्हें दे दिया और खुरासानी के घोड़े पर भ आया हूं"।

यह सुन कर सलीम थोड़ी देर चुप रहा पीछे उसने अपनी प्रतिज्ञा स्मरण करके कहा :—"अच्छा! आपका सब अपराध क्षमा किया, पर आज मुग़ल सेना को छोड़ जाइयेगा।

यह सुन कर शक्तसिंह बड़े प्रसन्न हुये, उन्होंने तत्काल ही मुग़ल शिविर का परित्याग किया। भाई से अनबन होने के कारण उन्हें देशद्रोहिता का कलङ्क अपने मत्थे लेना पड़ा था। बहुत दिन पीछे उनका उस कलङ्क से छुटकारा हुआ। मिलते समय भाई को कुछ नज़र देने की इच्छा से

कर मुग़ल सवारों को मारकर प्रतापसिंह के जीवन की रक्षा की। इसके पीछे भाई को ठहराया और उनसे जाकर मिले।

वह बड़ा सुन्दर समय था, जब मुद्दत से बिछुड़े हुये दोनों भाई—एक दूसरे के गले मिले। शक्तसिंह ने अपने भाई के चरणों में सिर रख कर, पहले अपराधों की क्षमा मांगी, प्रताप ने सजल नयन से भाई को गले लगाया। उस समय प्रताप ने हल्दी घाटी की पराजय भूल गये मुग़लों ने हल्दी घाटी पर विजय लाभ किया था, प्रताप ने अपने भाई के हृदय साम्राज्य पर अधिकार प्राप्त किया। उस समय उनके हृदय में अद्भुत आनन्द का सञ्चार हुआ। मानों राम और भरत बहुत दिन पीछे मिले।

परन्तु हाय! यह आनन्द दायक समय, अपूर्व सम्मिलन भाईयों का मिलाप बहुत देर तक न रह सका। क्योंकि महाराणा प्रतापसिंह का घोड़ा—चेतक उस दिन युद्धस्थल में बहुत थक गया था। उसके शरीर पर कई घाव भी आये थे। जिस समय दोनों भाई भ्रातृ सम्मिलन का अपूर्व आनन्द अनुभव कर रहे थे। उस समय प्रताप का घोड़ा चेतक अपने स्वामी का साथ छोड़ कर इस लोक से सिधार गया। घोड़े की मृत्यु देख कर प्रताप से रहा न गया। वे फूट फूट कर धाड़ मार कर ऐसे रोने लगे, जैसे कोई अपने स्वजन की मृत्यु पर रोता हो। वर्त्तमान आरोली के निकट जहां चेतक की मृत्यु हुई थी, वहां चेतक के स्मारक स्वरूप में एक वेदिका बनाई गई थी, उसको चेतक का चबूतरा कहते हैं। कहते हैं, मेवाड़ के जिस घर में प्रताप का चित्र है, उस घर में चेतक का भी चित्र है।

इस घटना के पीछे शक्त वहां बहुत देर नहीं ठहरे, उन्होंने अपना घोड़ा जिसका नाम अङ्कारों था प्रताप को दे दिया प्रताप उस पर सवार हो कर चल दिये और शक्तसिंह उनको यह कह कर कि सुविधा होने पर फिर मिलूंगा। मुग़ल शिविर की ओर लौट दिये।

शक्तिसिंह ने जिन दो सवारों को मारा था, उनमें से वे खुरासानी के घोड़े पर सवार हो कर वापिस आये। युवराज सलीम ने उनको खुरासानी घोड़े पर आने का कारण पूछा, पहले शक्तसिंह ने असली भेद को छुपाना चाहा, परन्तु सलीम ने समस्त अपराधों को क्षमा करने की प्रतिज्ञा की और असली हाल कहने के लिये शक्तसिंह से आग्रह किया। तब तो उन्होंने ब्यौरेवार सब हाल कह सुनाया और कहा :—"युवराज! विशाल राज्य का भार मेरे बड़े भाई पर है, उन पर विपत्ति आवे और मैं चुप बैठा रहूं, यह कैसे हो सकता है? खुरासानी और मुलतानी दोनों को मैंने ही मारा है" भाई के घोड़े के मरने पर अपना घोड़ा, मैंने उन्हें दे दिया और खुरासानी के घोड़े पर भ आया हूं"।

यह सुन कर सलीम थोड़ी देर चुप रहा पीछे उसने अपनी प्रतिज्ञा स्मरण करके कहा :—"अच्छा! आपका सब अपराध क्षमा किया, पर आज मुग़लसेना को छोड़ जाइयेगा।

यह सुन कर शक्तसिंह बड़े प्रसन्न हुये, उन्होंने तत्काल ही मुग़ल शिविर का परित्याग किया। भाई से अनबन होने के कारण उन्हें देशद्रोहिता का कलङ्क अपने मत्थे लेना पड़ा था। बहुत दिन पीछे उनका उस कलङ्क से छुटकारा हुआ। मिलते समय भाई को कुछ नज़र देने की इच्छा से

मैंसरौरगढ़ पर आक्रमण किया, और उसको जीतकर अपने भाई को भेट कर दिया। मैंसरौरगढ़ बहुत दिन तक शक्तावतों का स्थान रहा है। प्रताप ने भाई के इस व्यवहार से सन्तुष्ट होकर वह स्थान वारंवार के लिये उन्हें दे दिया।

राजमाता पुत्र शक्तसिंह को ही बहुत प्यार करती थीं। इसलिये वे भी वहीं जाकर रहीं। इसलिये अब भी शक्तसिंह के वंशधरों की माताएं "बाई जी महाराज" कहलातीं हैं। शक्तसिंह के आजाने से प्रतापसिंह का और भी बल बढ़ा। चन्द्रावतों की भांति शक्तवतों की भी वीरेन्द्र समाज में परिगणना हुई। शक्तसिंह ने खुरासानी और मुलतानी सिपाहियों को मार कर प्रताप की रक्षा की थी, इसलिये उनके वंशधर अब तक खुरासानी, मुलतानी के आर्गल अर्थात् खुरासानी मुलतानी को रोकनेवाले कहलाते हैं।

———:o:———

पन्द्रहवां परिच्छेद

महासङ्कट

"बड़े लहत सुख सम्पदा, बड़े सहत दुःख द्वन्द ।
उड़गण घटत न बढ़त कहुं, बढ़त घटत नित चन्द ॥"
"बड़े तजत नहिं नीति पथ, यदपि प्राण तजि देत ।
भूखो रहत मृगेन्द्र तउ, तृण न कबहुं मुख लेत ॥"

हल्दी घाटी के युद्ध की समाप्ति हो चुकी चौदह हजार राजपूत वीर हल्दीघाटी की रक्षा के लिये प्रसन्न मुख किसी प्रकार का सङ्कोच न करके अपने जीवन को न्योछावर करके स्वर्ग को सिधार गये। हल्दीघाटी राजपूत वीरों के रुधिर के सोतों से धुल गई। हल्दीघाटी युद्ध का परम पवित्र क्षेत्र है इस युद्ध की कथा कवियों की रसमयी कविता द्वारा चिरस्मरणीय रहेगी। इतिहास लिखनेवालों की पक्षपात रहित पवित्र लेखनी सुवर्ण अक्षरों में इस कथा को लिखेगी अन्तकाल तक वीरेन्द्र समाज में महाराणा प्रतापसिंह का नाम उच्च रहेगा। परन्तु हाय! वीरेन्द्र प्रताप के कष्टों का ठिकाना न था। मानो बादशाह के साथ ही साथ संसार की सुख सम्पदा सभी उनसे रूठगई। उस समय वीर शिरोमणि प्रताप के दुख का ठिकाना न रहा।

वर्षाऋतु के आरंभ में हल्दीघाटी का युद्ध हुआ था। वर्षा ने अपना भयङ्कर रूप धारण किया। लगातार की वर्षा ने बादशाही सेना का नाकों दम कर दिया। पर्वत के आस

पास नदी नाले भरने लगे, बादशाही लश्कर में बहुत से लोग बीमार पड़ने लगे। विजयोन्मत्त मुगल सेना का सारा उन्माद उतर गया। सलीम ने वहां की ऐसी स्थिति देखकर वहां से अपना डेरा हटा लिया। प्रताप को कुछ दिनों के लिये अवकाश मिला। परन्तु वसन्त ऋतु आते ही सब रास्ते साफ़ होगये। मार्ग में किसी प्रकार की रुकावट न देखकर मुगल सेना फिर आ पहुंची। प्रतापसिंह ने फिर अपने वीरों को इकट्ठा किया। माघ सुदी ७ सम्वत् १६३३ को मेवाड़ की स्वाधीनता का पुनः युद्ध हुआ असंख्य मुग़ल सैनिक सब प्रकार की तैयारी करके राजपूतजाति की मान मर्यादा और गौरव को धूल मिट्टी में मिलाने के लिये इकट्ठे हुये। मुग़ल सेना सब तरह से तैयार थी उनके पास किसी प्रकार के सामान की कमी नहीं थी। परन्तु बेचारे राजपूतों के पास क्या था, केवल उनके प्राण हार्दिक उत्साह अथवा आत्मिक बल था। इने गिने अपने थोड़े से वीरों को लेकर प्रताप, मुगल सेना से भिड़ ही गये। परन्तु थोड़े से राजपूत अपनी तलवारों के बल से कहां तक विशाल मुगल सेना का सामना करते। बहुत वीरता दिखलाने पर भी विजय लक्ष्मी राजपूतों से प्रसन्न नहीं हुई राजपूत वीरों ने कुम्भलमेरके किले में आकर आश्रय लिया।

मुग़ल सेना ने भी राजपूतों का पीछा किया, मुग़ल सेना के सेनापति शहबाज खां ने उस किले को घेर लिया। प्रताप ने बहुत कुछ आत्म रक्षा की, परन्तु भाग्य देवता सब तरह से उनके प्रतिकूल थे। गर्मी के दिन थे। राजपूत वीर किले में घिरे हुए थे। रसद की कमी थी पानी का अत्यंत कष्ट था ऊंची जगह होने से वहां पानी का अभाव था। गर्मी के दिनों

में पानी का अभाव असहनीय होजाता है । अब पानी की राजपूत वीरों को असहनीय वेदना होरही थी। कुम्भलमेर दुर्ग में "नगुण" नामक एक कुआ था। राजपूत वीर केवल उस कुंए के जल से ही अपनी प्यास बुझाते थे। परन्तु उस समय ऐसे देशद्रोही कुलाङ्गारों की कमी नहीं थी जो अपने राजपूत भाइयों के खून को चूसने में ही अपना बड़प्पन समझते थे। ऐसे ही जातिद्रोही देश विद्वेषियों में आबू के देवर अधिकारी थे। इस देश द्रोही आबू के अधिकारी की घृणित कारवाई के कारण राजपूत वीरों को भयङ्कर सङ्कट का सामना करना पड़ा। आबू के देवर के अधिकारी को जब देश द्रोहिता के लिये और कुछ न सूझ पड़ा तो उसने प्रताप के वैरी मुगलों को कुएं का हाल बतलाया मुगलों ने किसी ढङ्ग से कुंए का जल ही खराब कर दिया। जल के खराब और ज़हरीले होने के कारण प्रताप और उनके साथियों को विशेष कष्ट होने लगा। बहुत से ज़हरीले जल के पीने के कारण मृत्यु के ग्रास होने लगे। अब प्रताप को किले के खाली करने के अतिरिक्त और कुछ उपाय नहीं रहा उन्होंने शोणिगुरु सरदार को दुर्ग की रक्षा का भार सौंपा। बहुत से राजपूत वीरों के साथ उन्होंने उस किले को खाली कर दिया। वहां से प्रताप चौंद नामक पहाड़ी किले में गये।

शोणिगुरु सरदार ने अभूत पूर्व साहस से मुग़ल सेना का सामना किया। उसने इसकी बहुत चेष्टा की कि मुग़ल सेना चौंद तक पहुंचने न पावे, परन्तु उस वीर की चेष्टा सफल नहीं हुई और वह युद्ध में भूतल शायी हुआ। शोणिगुरु सरदार के मरने से मेवाड़ का एक प्रधान महाकवि

उठ गया। जिसकी कविता कामिनी ने मेवाड़ में विद्युत्शक्ति का प्रादुर्भाव कर दिया था, जिसकी कविता के सुनते ही मेवाड़ की स्त्रियां और बच्चों तक की नसों में स्वदेश रक्षा का खून बहने लग गया था। जिसके गीत सुनकर मेवाड़ के वीर, विशाल मुग़ल सेना का कुछ भी विचार न करके अपने देश की रक्षा के लिये प्राण देने को तैयार हुए थे। शोक! वही शोणिगुरु इस युद्ध में अपने देश वासियों को रुलाकर चलते बने। किन्तु इतने पर भी मेवाड़ की वीर मण्डली का नहीं घटा। राजपूतों का प्रधान आश्रयस्थल

था। परन्तु प्रताप अपनी प्रतिज्ञा नहीं भूले। वे मुट्ठी भर राजपूतों को लेकर मुग़ल सेना का सामना करते थे। जब प्रताप एक स्थान की रक्षा करते थे। तब दूसरा स्थान मुग़लों के हाथ में चला जाता था। मुग़लों की ओर से राजा मानसिंह ने धरमेति और गोल कुण्डा नामक किलों पर अधिकार कर लिया मुहब्बत खां ने राजधानी उदयपुर अपने हस्तगत करली। पर तब भी प्रताप पर से विपत्तियां दूर नहीं हुई' अमीशाह* नामक व्यक्ति ने चाँद और अगुण पानेर के भीलों और प्रताप के बीच में जो सम्बन्ध था वह तोड़ दिया। वहां से प्रताप को जो रसद आती थी, वह भी बन्द होगई। ऐसे महा सङ्कट के समय में फरीदखां नामक और एक मुग़ल सेनापति ने चप्पन पर आक्रमण किया और दक्षिण ओर से क्रमशः चौन्द की ओर कूच करने लगा। प्रताप को वह स्थान भी छोड़ना पड़ा। मानसिंह मुहब्बत खां, फरीदखां और शहबाज खाँ प्रभृति प्रधान २ मुग़ल सेनापतियों ने मेवाड़ भूमि को चारों ओर से घेर लिया।

इस प्रकार चारों ओर से घिरने पर प्रताप बिलकुल निस्सहाय होगये। उनको अपनी मातृभूमि मेवाड़ में स्वाधीनता पूर्वक विचरण करना भी असम्भव होगया। मेवाड़ेश्वर प्रताप की दशा दीन, हीन, मलीन भिखारी से भी गई बीती होगई। कहीं भी वे निश्चित रूपसे नहीं बैठने पाते थे। वह अपनी सेना सहित क्या, कुछ राजपूत वीरों के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान में भटकते फिरते थे। उस समय उनके परिवार

* कई इतिहास लेखकों ने अमीशाह को मुसलमान लिखा है और कुछ लेखक इसको राजपूत बतलाते हैं। —लेखक

उठ गया। जिसकी कविता कामिनी ने मेवाड़ में विद्युत्शक्ति का प्रादुर्भाव कर दिया था, जिसकी कविता के सुनते ही मेवाड़ की स्त्रियां और बच्चों तक की नसों में स्वदेश रक्षा का खून बहने लग गया था। जिसके गीत सुनकर मेवाड़ के वीर, विशाल मुगल सेना का कुछ भी विचार न करके अपने देश की रक्षा के लिये प्राण देने को तैयार हुए थे। शोक! वही शोणिगुरु इस युद्ध में अपने देश वासियों को रुलाकर चलते बने। किन्तु इतने पर भी मेवाड़ की धीर मण्डली का उत्साह नहीं घटा। राजपूतों का प्रधान आश्रयस्थल कुम्भलमेरु मुगलों के हाथ में चला गया सही। परन्तु धीर वीर प्रतापसिंह आश्रय हीन नहीं हुये। वे अपने व्रत से टले नहीं।

ऊपर कहा जा चुका है। कि कुम्भलमेरु छोड़ने पर प्रताप ने चौंद नामक स्थान में आश्रय लिया था। मेवाड़ के दक्षिण पश्चिम भाग में चप्पन नामक प्रदेश है। उस स्थान में बहुतः से पहाड़ हैं, उसमें कोई साढ़े तीन सौ छोटी छोटी बस्तियां हैं। इन सब बस्तियों में भील बसते हैं उस प्रदेश में ही चौंद नामक बस्ती पहाड़ पर है। प्रताप वहीं रहने लगे।

प्रताप की प्रतिज्ञा थी कि चाहे जो कुछ हो पर मुग़ल सम्राट अकबर के सामने अपना माथा नहीं झुकाऊंगा। उधर अकबर भी इस कठोर प्रतिज्ञा को धारण किये हुये था कि चाहे जो कुछ हो प्रताप को अपनी वश्यता स्वीकार कराके रहूंगा। अकबर अपनी इस प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिये अनेक सेनापतियों के अधीन दलकी दल फौज भेजने लगा यह फौज मेवाड़ के अनेक स्थानों में फैल गई। पहले युद्धों में ही प्रताप का धनबल जनबल सब कुछ नष्ट हो चुका

था। परन्तु प्रताप अपनी प्रतिज्ञा नहीं भूले। ये मुट्ठी भर राजपूतों को लेकर मुग़ल सेना का सामना करते थे। जब प्रताप एक स्थान की रक्षा करते थे। तब दूसरा स्थान मुग़लों के हाथ में चला जाता था। मुग़लों की ओर से राजा मानसिंह ने धरमेति और गोल कुण्डा नामक क़िलों पर अधिकार कर लिया मुहब्बत खां ने राजधानी उदयपुर अपने हस्तगत करली। पर तब भी प्रताप पर से विपत्तियां दूर नहीं हुईं अमीशाह* नामक व्यक्ति ने चाँद और अगुण पानेर के भीलों और प्रताप के बीच में जो सम्बन्ध था वह तोड़ दिया। वहां से प्रताप को जो रसद आती थी, वह भी बन्द होगई। ऐसे महासङ्कट के समय में फ़रीदखां नामक और एक मुग़ल सेनापति ने चप्पन पर आक्रमण किया और दक्षिण ओर से क्रमशः चौन्द की ओर कूंच करने लगा। प्रताप को यह स्थान भी छोड़ना पड़ा। मानसिंह मुहब्बत खां, फ़रीदखां और शहबाज खाँ प्रभृति प्रधान २ मुग़ल सेनापतियों ने मेवाड़ भूमि को चारों ओर से घेर लिया।

इस प्रकार चारों ओर से घिरने पर प्रताप बिलकुल निस्सहाय होगये। उनको अपनी मातृभूमि मेवाड़ में स्वाधीनता पूर्वक विचरण करना भी असम्भव होगया। मेवाड़ेश्वर प्रताप की दशा दीन, हीन, मलीन भिखारी से भी गई बीती होगई। कहीं भी वे निश्चित रूपसे नहीं बैठने पाते थे। वह अपनी सेना सहित एवं, कुछ राजपूत वीरों के साथ एक स्थान से दूसरे स्थान में भटकते फिरते थे। उस समय उनके परिवार

* कई इतिहास लेखकों ने अमीशाह को मुसलमान लिखा है और कुछ लेखक उसके राजपूत बतलाते हैं। —लेखक

की रक्षा का भार भीलों ने लिया। कैसा कठिन समय था, कि महाराणा की महारानी तथा उनकी सन्तान के लालन पालन का भार भीलों पर था। भील ही उनके भोजन की सामग्री लाते थे। दिन रात उनकी रक्षा (मुग़लों के हाथ कहीं महाराणा का कुटुम्ब न पड़ जाय) करते थ। दुश्मनों के पास आजाने के भय से भील लोग महाराणा के परिवार को झोलियों में लेजाकर गुफाओं में छिपाते थे कभी कभी लगातार आठ आठ दिन तक महाराणा प्रताप का अपने परिवार के लोगों से मिलना नहीं होता था। परन्तु फिर भी देशभक्त प्रताप अपनी प्रतिज्ञा पर अटल थे। प्रताप की ऐसी दशा देख कर, मुगल सेना के आनन्द की सीमा न रही।

ऐसे अनेक सङ्कटों के आजाने पर भी प्रताप निश्चिन्त नहीं थे। उनके राजपूत वीरों को जब कभी मौक़ा मिलता था तब ही वे मुग़ल सेना पर टूट पड़ते थे। जिससे मुगल सेना की विशेष हानि होती थी। राजपूत वीर अचानक मुगल शिविर पर आक्रमण करके बादशाही सेना को छिन्न भिन्न कर देते थे। मुग़ल सेना के योद्धाओं की रक्त धारा से अपनी मातृभूमि मेवाड़ का शरीर रङ्ग कर पहाड़ी कन्दराओं में विलीन होजाते थे। जिससे मुग़ल सेना को भी कुछ न कुछ विपत्ति का सामना करना पड़ता था। इस तरह से मुग़ल सेना को सङ्कटों से सामना करना पड़ा। उनके एक सेनापति फरीद खां ने नबी की कसम प्रतापसिंह को जीवित पकड़ने अथवा अपने हाथ से मार डालने की खाई "चौबे जी छ-बे होने गये थे पर रह गये दुबे" वही दशा फरीद खां की हुई उसे पीछे अपनी भूल ज्ञात हुई, उसे मालूम हुआ कि नर केसरी प्रताप

को पकड़ना कोई खिलवाड़ नहीं है प्रताप के कौशल से फरीदखां एक पहाड़ी में घिर गया। राजपूत वीरों ने उसकी सारी सेना को काट डाला। केवल एक आदमी फरीदखाँ के पास बच रहा। उस समय महाराणा प्रताप चाहते तो फरीदखां को क़ैद कर लेते अथवा मार डालते परन्तु उदार-हृदय महाराणा प्रतापसिंह ने फ़रीदखाँ के साथ जो व्यवहार किया वैसे व्यवहार के उदाहरण भारतवर्ष को छोड़कर संसार के शायद अन्य देश के किसी इतिहास में मिलें महाराणा ने उसके हथियार लेकर उसको छोड़ दिया।

मुग़ल सेना इस प्रकार युद्धों में निपुण नथी, राजपूत के सामने वह निस्तेज और उत्साह हीन हुई, मुग़ल सेना की सब चालाकी और वीरता निष्फल हुई, प्रताप पकड़ने में नहीं आये। इतने में वर्षा ऋतु फिर आरम्भ हो गई, नदी नाले बहने लगे इस कारण मुग़ल सेना अपनी छावनी को लौट गई, वीरेन्द्र प्रताप को वर्षा ऋतु आने के कारण फिर अवकाश का समय मिला।

इसी तरह से वर्षों बादशाह अकबर और महाराणा प्रताप में लड़ाई होती रही। हर वर्ष वर्षाऋतु में बादशाह की फौज लौट जाती थी और वसन्त में नये बल बल से आक्रमण करती थी। पर प्रताप का कठोर व्रत नहीं छूटा, उनकी प्रतिज्ञा अटल पर्वत के समान स्थिर रही। भीलों ने प्रताप के इस सङ्कट के समय स्वामिभक्ति का अपूर्व परिचय दिया। एक समय मुग़लों के हाथ में प्रताप का परिवार पड़ा ही होता, परन्तु उनके सदा के विश्वासी मित्र भीलों ने रक्षा की उस बार कावा निवासी भीलों ने उनके परिवार के लोगों

को बांस की टोकरियों में रखकर जावरा की टिन की खानि में छिपाया था, प्रभुभक्त भील स्वयं भूखे रहते थे पर प्रताप के परिवार के लोगों को भूखा नहीं रहने देते थे, और रात दिन उनकी रक्षा किया करते थे। कई शताब्दियों के बीत जाने पर भी जावरा और चौंद के घने जंगलों में भीलों के उपकारों के चिन्ह आज भी मिलते हैं आज भी उन जंगलों में बड़े बड़े वृक्षों में लोहे के कड़े और असंख्य कील दिखलायी पड़ती हैं। भील गण राजपुत्र, राजकुमारियों को उन कील और कड़ों पर बनेले पशु जन्तुओं से रक्षा करने के लिये रख देते थे। जिस राज परिवार को एक दिन सुन्दर राजमहल में भी तृप्ति नहीं होती थी, उस राज परिवार को अनाथों की तरह जंगलों में भीलों के आश्रय अपना जीवन व्यतीत करना पड़ा। परन्तु यह सब विपत्तियों के होते हुये भी प्रताप अपने कठोर प्रतिज्ञा से टले नहीं। उनकी प्रतिज्ञा थी कि चाहे जो कुछ हो पर मुग़ल सम्राट अकबर के सामने अपना मस्तक नहीं झुकाऊँगा।

अकबर भी निश्चिन्त नहीं था, वह छुपे छुपे प्रताप की टोह लेता था। वह प्रताप की यह दशा देख कर चकित और स्तम्भित हुआ। प्रताप के ऐसे असाधारण स्वार्थत्याग और परम कष्ट में धीर भाव को देख कर अकबर का हृदय भी पिघल गया। यह छुपे, छुपे प्रतापसिंह की दशा जानने की चेष्टा करता था। जब उसने यह सुना कि प्रताप केसरदारों को खाने के लिये थोड़े से फल फूल मिलते हैं, परन्तु उनका भी भोजन वे राजसी ठाट से करते हैं। ऐसे घोर सङ्कट में भी वे उसी मर्यादा का पालन करते हैं, जो वे सुख के समय

करते थे जंगली फलों के दोने उनके हाथ से सहर्ष सरदार लोग लेते हैं। अकबर ने जिस समय यह हाल सुना, उस समय उसकी प्रताप पर अत्यन्त भक्ति होगई। जो राजपूत गण प्रताप से शत्रुता करके अकबर के दरबार की शोभा बढ़ा रहे थे, वे भी महाराणा जी की सहायता करने लगे और अपने जी में अपने को धिक्कारने लगे। हिन्दू ही नहीं, अकबर के मुसलमान दरबारी भी महाराणा प्रतापसिंह की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते थे। और तो और मुग़ल सेना के सेना पति—मिरज़ा खां—"खानखाना" ने प्रतापसिंह के पास यह कविता भेजी थी :—

"*ध्रम रहसो रहसी धरा, खिस जासे खुरसाण।
अमर विसम्भर ऊपरे, रखियो नहचो राण" ॥

इसका आशय यह है :—"हे राणा जी! उस अमर जगदीश्वर पर विश्वास रखियेगा, आपका धर्म और धरती दोनों ही बने रहेंगे और बादशाह लज्जित होगा"।

---

* मेवाड़ की राज प्रशस्ति में लिखा है :—जब बादशाह मिर्जाखां को गोगूंदा में छोड़ गये थे तब कुमार अमर सिंह मिर्जाखां की बेगमों को पकड़ लाये थे, परन्तु महाराणाजी ने उनको बहुत प्रतिष्ठा के साथ मिरजाखां के पास पहुंचा दिया था"। बहुत सम्भव है, इसी पर प्रसन्न हो कर उसने महाराणा के पास उपर्युक्त कविता भेजी हो।

—:o:—

सोलहवां परिच्छेद

कठोर परीक्षा

"सहे सबै दुःख नेकु न अपने प्रण तें भटके।
राज गयो धन गयो फिरे बन बन में भटके॥
पै हाय सही जाती नहीं जीवत इन नयनन निरख।
इन दूध पीवते बालकन, रोटी हित रोवत बिलख॥"

श्रीराधाकृष्णदास

पाठक सुन चुके हैं कि उस समय प्रताप की दशा एक साधारण गृहस्थी से भी गयी बीती थी। साधारण से साधारण गृहस्थ के पास जो कुछ होता है, वह भी प्रताप के पास नहीं था। चाहे जैसा विपत्ति ग्रस्त क्यों न हो, उस के पास भी थोड़ा बहुत क्षुधा निवृत्ति के लिये होता है। पर प्रताप के पास कुछ नहीं था। गृहस्थ को रात्रि में सोने का कहीं तो भी ठिकाना होता है, पर प्रताप के पास वह भी नहीं था राह चलता हुआ एक भिखारी किसी पेड़ के तले निश्चिन्त होकर रात को सो तो भी लेता है, परन्तु प्रताप को कहीं सोने का भी ठिकाना नहीं था। न मालूम किस समय शत्रु आजाय, यह भय प्रताप को रात्रि दिन लगा रहता था। जब मुग़ल सैनिक गण किसी तरह से भी प्रताप को नहीं पकड़ सके, सब प्रकार की चेष्टाएँ करके हार गये, पर प्रतापने मुग़ल सम्राट अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की तब उन्हों ने प्रताप के परिवार में से ही किसी को पकड़ कर उसको अपमा-

नित करके ही अपना कलेजा ठंडा करने की ठानी। इसलिये मुग़ल सैनिक जब कभी अवसर देखते थे तब ही प्रताप के परिवार को पकड़ने की चेष्टा करते थे, परन्तु प्रभु भक्त भील किसी न किसी प्रकार प्रताप के परिवार की रक्षा करते थे। इस प्रकार प्रताप को प्राणों से अधिक प्यारे, स्त्री पुत्र आदि परिवार का कष्ट उनको कितनी ही बार प्राणान्त पीड़ा देने लगा, पर उन्होंने अपने कठोर प्रण के सामने इस प्राणान्त पीड़ा की कुछ परवाह नहीं की।

एक दिन प्रताप सिंह की राज महिषीने पांच बार भोजन प्रस्तुत किया, परन्तु पांचों बार राजपरिवार को मुग़ल सैनिकों के कारण भोजन छोड़ कर भागना पड़ा था। एक बार भी भोजन करने का समय नहीं मिला। पांचों बार प्रस्तुत किये हुए भोजनको छोड़ कर उन्हें पहाड़ों के दुर्गमस्थानों में जाना पड़ा किसी न किसी तरह से उस दिन मुग़ल सैनिकों से प्रताप के परिवार की रक्षा हुई। परन्तु तिस पर भी प्रताप अपने व्रत से डिगे नहीं।

मनुष्य सब कुछ सह सकता है। परन्तु सन्तान का कष्ट सहना कठिन है। दूध मुंहे कोमल अज्ञान बच्चों की चिल्लाहट कठोर से कठोर हृदय व्यक्तिओं के कलेजे को पिघला देती है। संसार में ऐसे कितने माता पिता हैं, जिनके वज्र से कठोर हृदय को भी अपनी सन्तान के दुःख को देखकर न रोना पड़ा हो। वीरेन्द्र प्रताप सिंह की भी ऐसीही कठोर परीक्षा का अवसर उपस्थित हुआ। कई दिन के घोर सङ्कट के पीछे एक दिन महाराणा प्रतापसिंह की राजमहिषी और पुत्रवधू ने "मल" नामक घास के बीजों की रोटियां बनाई थीं। रोटियां

तैयार होने पर उपस्थित बालक, बालिकाओं को एक एक रोटी बांट दीगई थीं, उस दिन और कुछ भोजन न था, सिर्फ उन्हीं एक एक रोटी का सब को सहारा था, जहां यह रोटियां बट रही थीं, वहीं पासही प्रताप लेटे हुए, अपनी दशा और मेवाड़ के भाग्य के सम्बन्ध में विचार रहे थे। जिस समय इस तरह के विचार सागर में मग्न थे, कि यकायक अपनी छोटी लड़की के रोने की आवाज़ सुनकर चौंक पड़े, देखा कि एक जङ्गली बिल्ली यकायक टूटकर लड़की की गोद से आधी रोटी छीनकर भाग गई इसीसे बालिका हृदय विदारी रोदन कररही है। वीरेन्द्र प्रताप इस दृश्य को देखकर कांप उठे। प्रतापसिंह ने प्रसन्नमुख से हल्दी घाटी रणस्थल में अपने देशवासियों की रुधिर की नदी बहती हुई देखी थी, उन्होंने प्रसन्न मन से देश के गौरव को बनाये रखने के लिये अपने भाइयों को उत्तेजित किया था। वेही प्रताप बालिका को रोते देखकर कांप उठे, जो प्रताप अपने वीरव्रत पालन के लिये सहर्ष राजपाट, धन दौलत सभी की राष्ट्रीय यज्ञ में पूर्णाहुति देकर भी तनिक विचलित नहीं हुए, उन्हीं प्रताप का बालिका के रोने से कलेजा फटने लगा। जो प्रताप अनेक आपत्तियों के आने पर भी अपने कठोर व्रत से नहीं हटे थे, वे ही प्रताप आज अपनी एक एक छोटी कन्या के रोने के कारण प्रतिज्ञा भङ्ग करने को तैयार हुए। कन्या के रोने के साथही साथ महाराणा की आंखों से भी अश्रुधारा बहने लगी, प्रशान्त सागरमें अशान्ति रूपी लहरें उठने लगी। भगवान सूर्य की गति बदल गई गिरिराज हिमालय कन्दरा में धस गया। प्रतापसिंह आखिर मनुष्य ही तो थे. उनका हृदय कोमल

बालिका के दुःख को सहन नहीं कर सका, "हाय ! छोटे छोटे बच्चे तक मेरे कारण इतना दुःख पावें, फिर इस प्रतिज्ञा को लेकर क्या करूंगा"? यही विचार उनके हृदय के अन्दर उठने लगा। यह हताश हृदय से कहने लगेः—"बस अब सहा नहीं जाता, यथेष्ट हुआ"। यह कहकर वे अकबर से सन्धि करने को तैयार हुए।" सरदारों ने हाथ जोड़कर महाराणा से इस प्रस्ताव के विरुद्ध प्रार्थना की, राजमहिषीने प्राणेश्वर को इस प्रस्ताव के विपरीत बहुत कुछ समझाया, बुझाया, पर कोई भी तर्क, कोई भी युक्ति महाराणा के हृदय समुद्र की गति रोकने के लिये तैयार नहीं हुई। उन्होंने अकबर से सब लोगों के मने करने पर भी सन्धि की प्रार्थना करही तो दी। पत्र देकर दूत अकबर के पास रवाना करदिया।

अनेक विज्ञ, विचारशील सज्जन कह उठेंगे कि प्रताप के चरित्र में यह दुर्बलता थी, वे लोग भलेही इस घटना को लेकर प्रताप के चरित्र में दुर्बलता का कलङ्क थोपा करें, परन्तु यह दुर्बलता नहीं है प्रताप लाख वीर होने पर भी मनुष्यही तो थे न ? मनुष्य होने के कारण वे मनुष्य स्वभाव से कैसे बच सकते थे ? फिर प्रताप के चरित्र में दुर्बलता क्यों बतलायी जाय ? इस घटना को क्यों दोष दिया जाय ? कौनसा माई का लाल ऐसा है जिसका पत्थर का कलेजा ऐसे अवसर पर न पसीजता वह मनुष्य मनुष्य नहीं है, वह देवता है अथवा राक्षस, अथवा दानव है। हम तो समझते हैं कि ऐसे अवसर पर देवगण भी धैर्य और कर्तव्य से च्युत होजाते हैं, बड़े प्राण संहारी राक्षसों को भी देखा गया है कि उन्हें बड़े बड़े हत्या काण्ड करने पर भी; दया नहीं आई पर सन्तान की थोड़े

से दुःख को देखकर उनका हृदय भी पसीज गया। सन्तान की दारुण वेदना देखकर कौन ऐसा व्यक्ति है जिसके हृदय में करुणा उत्पन्न न होती हो? कठोरता और कोमलता दोनों ही हृदय के महत्व के सूचक हैं। कर्त्तव्य पालन करने में प्रताप का हृदय जितना कठोर था, उतना ही दूसरों की विपत्ति में कोमल था। यही कारण था कि बड़े बड़े सङ्कट में फंसकर अनेक यन्त्रणाएं झेलकर भी जो प्रताप अपने व्रत पालन से हटे नहीं थे, वेही प्रताप एक बालिका के दारुण रुदन को सहन करने में समर्थ नहीं हुए। अकबर का समस्त कौशल, समस्त शक्ति अपनी अधीनता के पाश में जिन प्रताप को जकड़ने के लिये व्यर्थ हुए। वेही कठोरव्रती प्रताप आज, एक बालिका के साधारण विलाप के कारण अपनी स्वतन्त्रता बेचने को तैयार हुए हैं। अपने सरदारों के, राजमंत्रियों के आत्मीय जनों के, प्राण प्यारे युवराज अमरसिंह के, यहाँ तक कि अपनी हृदयेश्वरी के समझाने बुझाने से भी अकबर की अधीनता स्वीकार करने का सङ्कल्प परित्याग नहीं किया। क्या संसार में कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो इस समय प्रताप की डूबती हुई नैया को पार लगावे? देखें, बीच मंझधार में से कौनसा खेवट प्रताप की नैया को उबारता है?

सत्रहवां परिच्छेद

पृथ्वीराज का पत्र

*चुप रहनहू नहिं जोग जब देश हित विपति प्रताप पर्यो।
तासों बचावन प्रियहि अब हम देह निज विक्रय कर्यो।

प्रताप की अधीनता का समाचार लेकर दूत अकबर के दरबार में पहुंचा। दूतके आते ही अकबर की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। लगातार कई वर्ष से जिस प्रताप के कारण अकबर का नाकों दम था। जिस प्रताप को अधीन करने में अकबर को धन और जन दोनों की बहुत सी क्षति झेलनी पड़ी थी, वही प्रताप बिना किसी दिक्कत के अकबर के अधीन होना चाहता है। तब क्यों न खुशी हो? प्रताप के सन्धि आधीनता विषयक प्रस्ताव के कारण सारा शाही दरबार आनन्द में गूंज उठा। सम्राट अकबर के आनन्द का तो पूछना ही क्या था? अकबर मेवाड़ का राज या राजत्व नहीं चाहता था, वह चाहताथा कि एक बार प्रताप सिर झुकादें तो सब काम बन जावे। बस प्रताप के दूत के आने से अकबर की वह हार्दिक लालसा पूर्ण हुई। प्रताप के सन्धि विषयक प्रस्ताव के पहुंचतेही राजधानी में चारों ओर आनन्दोत्सव

---

* मूल कविता यह है—
चुप रहन [illegible] नहिं जोग जब मम हित विपति चन्दन परयो।
तासों बचावन प्रियहि, अब हम देह निज विक्रय करयो॥
(मुद्राराक्षस)

होने लगा, पर यह किसी ने नहीं सोचा कि परमेश्वर को यह मञ्जूर नहीं है कि प्रताप भी अन्य राजपूतों की तरह से अकबर के चरणों में मस्तक झुकाकर, इस संसार से राजपूत जाति का नाम निशान मिटादे। आनन्द का यह स्रोत बहुत दिन तक ठहरनेवाला नहीं है। मझधार में प्रताप की अटकी नाव को उबारनेवाला भी कोई इस राजधानी में, नहीं नहीं खास शाही दरबार में भी कोई है?

प्रताप के पत्र को पाकर अकबर बहुत ही प्रसन्न हुये, उन्होंने बारी बारी से वह पत्र अपने सब ही दरबारियों को दिखलाया। अकबर ने वह पत्र बीकानेर के राजा के छोटे भाई पृथ्वीराज को भी दिखलाया। यह हम पहले कह चुके हैं कि पृथ्वीराज अकबर के यहां राजनैतिक बन्दी अवश्य थे, पर उन्होंने अपना हृदय अकबर को नहीं बेचा था। अकबर के दरबार में उनके समान कोई भी स्वदेशभक्त और स्वजाति हितैषी नहीं था। प्रताप का पत्र अकबर के दिखलाने पर उन्हें आन्तरिक वेदना हुई, वह महाराणा प्रताप में बड़ी श्रद्धा और भक्ति रखते थे, इससे उन्हें महाराणा का पत्र देख कर अत्यन्त दुःख हुआ। प्रथम तो उन्होंने प्रतापसिंह के पत्र का विश्वास ही नहीं किया फिर विश्वास हो जाने पर उन्होंने बादशाह से कहाः—"जहाँ पनाह! यह पत्र जाली है, मैं प्रताप को भलीभांति जानता हूं, वे कभी भी अधीनता स्वीकार करनेवाले नहीं हैं। वे आपका राजमुकुट पाजाने पर भी आपके मन मुताबिक—सन्धि मानने को तैयार नहीं होंगे, सम्भव है, प्रताप के किसी शत्रु ने यह पत्र भेजा है"। इसके पीछे उन्होंने अकबर से अनुमति लेकर प्रताप के पास एक

चिट्ठी भेजी, उन्होंने अकबर से चिट्ठी भेजने का कारण, असली घटना का पता लगाने का बतलाया था। किन्तु उनका भीतरी अभिप्राय यही था कि किसी तरह से प्रताप अकबर की अधीनता स्वीकार न करें। पृथ्वीराज जैसे देशभक्त थे वैसे ही बड़े भारी कवि थे उन्होंने महाराणा प्रताप के पास भाषा में ओजस्विनी, नस २ फड़काने वाली * कविता भेजी, जिसका आशय यह है :—हिन्दुओं का आशा भरोसा सब कुछ हिन्दू

* पृथ्वीराज के पत्र की असली नकल इस समय मिलती नहीं है कई ग्रन्थकारों ने चेष्टा की परन्तु किसी को उपलब्ध नहीं होसकी है जो कुछ पद्य प्रचलित हैं उनकी नकल नीचे दी जाती है।

सोरठा—अकबर घोर अंधार, ऊंघाणा हिन्दू अवर,
जागे जगदातार पोहरे राणा प्रताप सी ॥२॥
अकबरिये इणबार दागिल की सारी दुनी,
अण दागिल असवार चेतक राणा प्रताप सी।
अकबर समद अथाह सूरापण भरियो सुजल।
मेवाड़ो तिणमाह पोयण फूल प्रताप सी ॥ ३ ॥
घाटो अकबरशाहि तेजो तिहारो तुरकड़ा।
नमि नमि नीसरयाह राण बिना सहराजवी ॥४॥
चौथो चीतों डाह बांटो बाजती तणू।
दीसे मेवाड़ाह मोशिर राणा प्रताप सी ॥ ५ ॥

दोहा—जननी सुत अहड़ा जणे जहड़ो राणा प्रताप।
अकबर सूती ही औंधके जाण सिराणे साप ॥६॥

सोरठा—पातल पाघ प्रमाण साची सांगा हरतणी।
रही अमोलख राण अकबर सू वाभी अणी ॥ ७ ॥
सेवै गह संसार असुर पलोके ऊपरे।
जागे तू तिण्वार पोहरे राणा प्रताप सी ॥ ८ ॥

जाति पर ही है महाराणा इस समय उस सब को त्याग देते हैं। राजपूत जाति आज रसातल को जाचुकी है हमारे राजपूत वीरों में आज वीरता नहीं रही। हमारी देवियों में सतीत्व का भाव नहीं रहा। राजपूत जाति का सभी सम्मान आज समाप्त हो चुका। यदि प्रतापसिंह न होते तो आज अकबर घी, गुड़ सभी को एक भाव खरीद लेते। यदि प्रतापसिंह न होते तो अकबर सभी को एक पथ के पथिक बना डालते। हमारी जाति में अकबर एक व्यापारी हैं, उन्होंने सब को ही खरीद लिया है, केवल अमूल्य रत्न उदयकुमार (प्रतापसिंह) बाकी है। अकबर केवल उदयसिंह के सूरवीर पुत्र का मूल्य नहीं चुका सके हैं। मेवाड़ की गोद में प्रताप का सा शूरवीर पुत्र न होने से आज मुगल सम्राट अकबर की कुटिलनीति से सब राजपूत एक हो जायेंगे। सबों ने ही धीरज खोकर* नौरोज़े के बाजार में अपना अपमान देखा है। केवल हमीर के वंशधरों को ही आज़ तक यह अपमान नहीं देखना पड़ा है। क्या कभी हमीर के वंशधर भी अपने जातीय मान को इस बाजार में बेचेंगे। राणा का राज्य, राजधानी तथा सब कुछ नष्ट हो चुका है; परन्तु उनके पास केवल अमूल्य रत्न बाकी है। वह अमूल्य धन उनका जातीय मान और धर्म है जगत यही पूछता है कि प्रताप के पास धर्म रक्षा का कौनसा सहारा है? किसका भरोसा है? यही उत्तर मिलता है कि पुरुषार्थ और तलवार का"। महाराणा केवल अपनी तलवार के सहारे से ही क्षत्रियों के गौरव की रक्षा कर रहे हैं। बाजार

* नौरोजे का रहस्य.—नवा परिच्छेद में "नौरोजा और अबला के हार्दिक व्रत" शीर्षक में देखो। लेखक

का यह खरीदार कुछ सदा जीता न रहेगा। एक दिन अवश्य जाति बाजार के इस खरीदार को ठगा जाना पड़ेगा। एक दिन अवश्य ही वह इस लोक से चल बसेगा। उस दिन सब ही, लुटी हुई जन्मभूमि में राजपूत बीज बोने के लिये महाराणा के पास पहुंचेंगे। तब ही इस बीज की रक्षा होगी। तब ही राजपूतों की वीरता दूसरी बार उज्ज्वल होगी। इस लिये सब दो महाराणा की ओर टक टकी लगाये ताक रहे हैं।

पृथ्वीराज के उपर्युक्त उत्साह जनक वाक्यों से राजपूत जाति में एक बिजलीसी दौड़ गई, प्रताप और उनके साथियों में नये सिरे से दुगना बल आया। बादशाह को सन्धि विशयक पत्र लिख कर प्रताप को कठोर मानसिक वेदना हुई थी, पृथ्वीराज के पत्र से उनकी वही दारुण वेदना दूर हुई। वे फिर वीर व्रत पालन करने को समर्थ हुए। पृथ्वीराज के पत्र ने मझधार में पहुंची हुई, महाराणा प्रतापसिंह की नांव को किनारे लगाया। धन्य है वह देश जहां पृथ्वीराज सरीखे कवि हों, यदि पृथ्वीराज न होते तो न मालूम उस समय राणा प्रताप की कौन गति होती राजपूत जातिके इतिहास में, भारतवर्ष के राष्ट्रीय इतिहासमें पृथ्वीराज का पत्र सदैव स्मरणीय रहेगा।। जिस कविता कामिनीने प्रतापसिंह जैसे वीरेन्द्र के हृदय को सात्वना और शान्ति दी, वह कविता कामिनी सदैव :भारत वर्ष के इतिहास में स्मरणीय रहेगी। पृथ्वीराज जैसे कवियों का जीवन सफल है। वह कवि ही क्या, ? जो अपने डूबते हुए देश और जाति को उठा न सकता हो, तभी तो विलायत के प्रसिद्ध विद्वान कारलाईल को अपने

हीरोएण्ड "हीरोवरशिप" (वीर और वीरपूजा) नामक ग्रन्थ में कहना पड़ा है कि इटाली डान्टे जैसे कवियों के होने से रुस की अपेक्षा विशेष सौभाग्य शाली है. जिस के पास कज्जाक सवार हैं। एक कविता में एक सेना से कहीं अधिक बल होता है, पर वह कविता हो, तब न ? स्मरण रखो ! किसी अङ्गरेज़ कवि की एकाध, दो किताबों के अनुवाद करने से ही कोई कवि नहीं होसकता है। जिसके हृदय है, वही कवि है हिन्दी संसार में आज कितने कवि हैं, जिनके हृदय हो। वे एकाध, दो अङ्गरेज़ो की पुस्तक का अनुवाद करके ही अपने को कवि समझ कर फूल उठते हैं। उनसे हमारा कहना है कि वे एक बार यूनान के होमर कवि की बात विचारें तो सही, यूनानका कवि होमर था तो अंधा पर अन्धे होने पर भी उसकेहृदय के कपाट खुले हुए थे तब तो वह अन्धा होने पर भी यूनान में घर घर भीख मांगता हुआ अपनी कविता से अपने स्वदेश भाइयों में जागृति फैलाता था। कहोतो सही ! तुममें ऐसे कितने कवि हैं ? प्रतिध्वनि फिर पूछती है कि आज होमर जैसे हिन्दी संसार में कितने कवि हैं ? किसी अङ्गरेज़ी कवि के एकाध ग्रन्थ का टूटा फूटा अनुवाद भले ही करलो पर भाई ! सच्चा कवि होना बहुत दूर है।

———:०:———

अठारवां परिच्छेद

भामासाह की अपूर्व सहायता

"जाधन के हित नारि तजैं पति पूत तजैं पितु सीलहिं सोई
भाई सों भाई लरैं रिपु से पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई
ता धन को बनियां है, गिन्यौ न दियो दुख*देश से आरत होई
स्वारथ अर्थ तुम्हारो ई है, तुमरे सम और न याजग लोई"

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

पृथ्वीराज के पत्र को पाकर प्रताप उत्साहित हुए, वे दुगने उत्साह से अपनी पूर्व प्रतिज्ञा को स्थिर रखने के लिये उद्यत हुए। उन्होंने मुग़ल सम्राट अकबर की अधीनता स्वीकार न करने के लिये पुनः प्रतिज्ञा की परन्तु यह सब कुछ होने पर भी प्रताप के पास उस समय अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने को क्या रखा हुआ था? लगातार अठारह वर्ष के युद्ध के कारण वे धन बल, जन बल सब तरह से क्षीण हो चुके थे? प्रबल शत्रु, मुग़ल सम्राट अकबर से लड़ते लड़ते उनकी सारी शक्ति नष्ट हो चुकी थी, अकबर को भी इन लगातार युद्धों में थोड़ी, बहुत अवश्य हानि सहन करनी पड़ी परन्तु फिर भी अकबर को बहुत सा सहारा था। उसका राज्य धन धान्य परिपूर्ण था, उस के राजकोष में धनका अभाव न था, अकबर की सेना को चित्तौड़ पहुंचते समय जो हानि सहन करनी पड़ती थी वह राजधानी

* मूल कविता में देश के स्थान में "मीत" शब्द है

हीरोएण्ड "हीरोवरशिप" (वीर और वीरपूजा) नामक ग्रन्थ में कहना पड़ा है कि इटाली डान्टे जैसे कवियों के होने से रुस की अपेक्षा विशेष सौभाग्य शाली है, जिस के पास कज्जाक सवार हैं। एक कविता में एक सेना से कहीं अधिक बल होता है, पर वह कविता हो, तब न? स्मरण रखो! किसी अङ्गरेज़ कवि की एकाध, दो किताबों के अनुवाद करने से ही कोई कवि नहीं होसकता है। जिसके हृदय है, वही कवि है हिन्दी संसार में आज कितने कवि हैं, जिनके हृदय हो। वे एकाध, दो अङ्गरेज़ी की पुस्तक का अनुवाद करके ही अपने को कवि समझ कर फूल उठते हैं। उनसे हमारा कहना है कि वे एक वार यूनान के होमर कवि की बात विचारें तो सही, यूनान का कवि होमर था तो अंधा पर अन्धे होने पर भी उसके हृदय के कपाट खुले हुए थे तब तो वह अन्धा होने पर भी यूनान में घर घर भीख मांगता हुआ अपनी कविता से अपने स्वदेश भाइयों में जागृति फैलाता था। कहो तो सही! तुममें ऐसे कितने कवि हैं? प्रतिध्वनि फिर पूछती है कि आज होमर जैसे हिन्दी संसार में कितने कवि हैं? किसी अङ्गरेज़ी कवि के एकाध ग्रन्थ का टूटा फूटा अनुवाद भले ही करलो पर भाई! सच्चा कवि होना बहुत दूर है।

---:o:---

अठारवां परिच्छेद

भामासाह की अपूर्व सहायता

"जाचत के हित नारि तजैं पति पूत तजैं पितु सीलहिं सोई
भाई सों भाई लरैं रिपु से पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई
ता धन को धनियां है, गिन्यौ न दियो दुख*देश से आरत होई
स्वारथ अर्थ तुम्हारो ई है, तुमरे सम और न याअग सोई"

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

पृथ्वीराज के पत्र को पाकर प्रताप उत्साहित हुए, वे दुगने उत्साह से अपनी पूर्व प्रतिज्ञा को स्थिर रखने के लिये उद्यत हुए। उन्होंने मुग़ल सम्राट अकबर की अधीनता स्वीकार न करने के लिये पुनः प्रतिज्ञा की परन्तु यह सब कुछ होने पर भी प्रताप के पास उस समय अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण करने को क्या रखा हुआ था ? लगातार अठारह वर्ष के युद्ध के कारण वे धन बल, जन बल सब तरह से क्षीण हो चुके थे। प्रबल शत्रु, मुग़ल सम्राट अकबर से लड़ते लड़ते उनकी सारी शक्ति नष्ट हो चुकी थी, अकबर को भी इन लगातार युद्धों में थोड़ी, बहुत अवश्य हानि सहन करनी पड़ी परन्तु फिर भी अकबर को बहुत सा सहारा था। उसका राज्य धन धान्य परिपूर्ण था, उस के राजकोष में धनका अभाव न था, अकबर की सेना को चित्तौड़ पहुंचते समय जो हानि सहन करनी पड़ती थी वह राजधानी

---

* मूल कविता में देश के स्थान में "मीता" शब्द है

दिल्ली पहुंच जाने पर पूर्ण होजाती थी, परन्तु प्रताप के पास कुछ नहीं था, उनकी अकबर से भिन्न दशा थी। मेवाड़ के वे राजराजेश्वर, नरनाथ, दीन हीन पथ के भिखारी बने हुए थे। उन को दोनों समय सूखी रोटी खाने को और रात्रि में आराम से सोने को भी कहीं ठिकाना न था, बहुत से उनके साथी वीर रण स्थल में मेवाड़ की रक्षा के लिये सदैव को सोगये। बहुत से सैनिक साथ छोड़ कर चलते बने, उनके साथ केवल वे इने गिने वीर थे, जिन्होंने चित्तौड़ के उद्धार की महाराणा के साथ कठोर प्रतिज्ञा की थी। धन हीन, जनहीन प्रतापसिंह अपने वैरीका मुकाबिला किस तरह से कर सकते थे?

महाराणा अपनी जन्मभूमि की दुर्दशा के कारण दुःखी ही थे बहुत सोच विचार के पीछे उन्होंने निश्चय किया कि जब राजधानी चित्तौड़ का परित्याग कर दिया, तब जन्मभर के लिये मेवाड़ भूमिको ही छोड़ देना चाहिये। निश्चय हुआ कि अर्वली पर्वत पार करके सिन्ध नदी के किनारे सोगदी राज्य में जाकर बसें। वहां मेवाड़ का झण्डा गाड़ें। बस, यह निश्चय करते ही उन्होंने अपने गुप्तचरों द्वारा ख़ास ख़ास सरदारों को ख़बर भेजदी, इस खबर को पाते ही दूर दूर से राजपूत गण प्रतापसिंह की रक्त पताका के नीचे इकट्ठे होने लगे। यात्रा की सबही आवश्यक तैय्यारियां होचुकीं, मातृ भूमि को अन्तिम प्रणाम करने का समय आपहुंचा।

प्रतापसिंह अपनी स्त्री, पुत्र, पुत्रियां और कुछ सरदारों के साथ अर्वली पर्वत की चोटी पर चढ़े, वहां से उन्होंने अपने प्यारे चित्तौड़ का दर्शन किया, चित्तौड़ को देखते ही

उनके हृदय में अनेक प्रकार की भावनाएँ उठने लगीं। हृदय से शोकभरी लम्बी स्वासें खीचने लगे, उस समय उनके हृदय में निराशा की तरङ्गें उठ रहीं थीं वे सोचने लगे कि इस जन्ममें मातृ भूमि मेवाड़ का उद्धार न हो सकेगा। इस तरह से वे निराश और चिन्ता से व्यथित हृदय होकर अर्वली पर्वत से पार होकर, मारवाड़ भूमि में पहुंचें, और अपनी जन्मभूमि को सदैव के लिये प्रणाम किया। किन्तु ईश्वर की माया अपरम्पार है, मनुष्यका चाहा हुआ कुछ नहीं होता। उसकी गति कौन रोक सकता है, प्रताप को जो कुछ दुःख था, वह मेवाड़ भर के सब ही मनुष्यों को था। प्रताप अपनी मातृभूमि को केवल परमात्मा से मुक्त न कराने के कारण ही छोड़ने को तैयार हुए थे, तव कौन ऐसा अभागा था जो इस व्रत में सहायता न देता ? मातृभूमि–किस को प्यारी नहीं होती। छोटीसी वनास नदी ने जिस प्रकार नाचते, कूदते, लुड़कते पुड़कते अर्वली के पहाड़ी भाग की शोभा बढ़ा रखी है, वैसेही आत्मोसर्ग रूपी क्षीर धाराने भी मेवाड़ के वीरों के कठोर व्रत को अमृत मय बना दिया है। आत्मोत्सर्ग करने वाले जिन महापुरुषों का नाम मेवाड़ के इतिहास में आता है, उनमें से एक भामासाह भी हैं। भामासाह प्रताप के मंत्री थे।

जिस समय प्रताप तथा उनके कुछ साथी स्वजन तथा इष्ट मित्रों से मिलकर चलने लगे उस समय मेवाड़ के प्राचीन मन्त्री भामासाह भी उनसे मिलने आये उस समय दीनभाव से प्रताप को स्वदेश परित्याग करते देखकर भामासाह का हृदय भर आया वह मन्त्री प्रवर अपने स्वामी की दीन दशा

[illegible] रोने लगा उसने अपने स्वामी को मेवाड़ के राज-
सिंहासन पर पुनः प्रतिष्ठित करने के लिये अलौकिक आत्मो-
त्सर्ग का परिचय दिया। उसने न केवल अपने समय का ही
[illegible] किन्तु अपने पूर्व-पुरुषों का समस्त सञ्चित
धन अपने स्वामी मेवाड़ेश्वर के पद पंकज पर रख दिया।
और विनती की कि नाथ! आप इस देशको छोड़कर न जांय,
इस देश का उद्धार कीजिये। प्रताप और उनके परिवार-वर्ग
भामाशाह का यह कृत्य देखकर चकित और स्तम्भित होगये,
प्रताप के साथियों के उदास चेहरे पर हंसी की रेखा दिखलाई
पड़ने लगी। प्रताप के शिविर में से "जय भामाशाह की जय"
ध्वनि से चारों दिशा गूंजने लगी। उसी दिन से भामाशाह
मेवाड़ के उद्धार कर्ता कहलाये जाने लगे।

पृथ्वीराज के पत्र और भामाशाह के अलौकिक आत्मो-
त्सर्ग ने मरी हुई राजपूत जाति के लिये सञ्जीवनी शक्ति का
कार्य किया। जो राजपूत वीर निराश हो चुके थे। उनके
हृदय में आशा का स्रोत बहने लगा। वीरेन्द्र प्रताप का साहस
पहले से और भी दुगना होगया। कहते हैं कि भामाशाह का
इतना धन था कि उससे पच्चीस हजार वीरों का बारह वर्ष
तक निर्वाह अच्छी तरह से हो सकता था। [illegible] ह से धन
की सहायता पाकर वीरेन्द्र प्रताप फि[illegible] का
करने की चेष्टा करने लगे। धन के [illegible]

उन्नीसवां परिच्छेद

मेवाड़ विजय

"चलो चलो सब वीर आजु मेवार उबारें।
अहो आज या पुण्य भूमि से शत्रु निकारें॥
चिर स्वतन्त्र यह भूमि यवन करसों उद्धारें।
हिन्दू नामहिं थापि धर्म अरिगनहिं पछारें॥
नभ भेदि आजु मेवाड़ पै उड़ै शिशोदिया कुल ध्वजा।
जा शीतल छाया तरे रहै सदा सुख सों प्रजा॥
श्रीराधाकृष्णदास।

सेना का सब सामान इकट्ठा करके प्रताप स्वदेश उद्धार के लिये चले। इस बार वीरेन्द्र प्रताप ने एक और भी कठोर प्रतिज्ञा की। उनकी प्रतिज्ञा थी कि यदि देश का उद्धार नहीं कर सकेंगे तो आत्मघात करके अपनी जीवनलीला समाप्त करदेंगे। इधर प्रताप की ऐसी कठोर प्रतिज्ञा थी उधर मुग़ल शहबाज़ खां देवीर नामक स्थान में पड़ाव डाले हुए था। वह राजपूतों की ओर से बिलकुल निश्चिन्त था। वह महाराणा का मेवाड़ छोड़कर जाना सुनकर अनेक प्रकार के मनमोदक बांध रहा था। वह समझे हुये था कि उसका मार्ग बिलकुल कांटों से साफ़ होजावेगा। परन्तु थोड़े ही दिनों पीछे शहबाज़खां को अपनी भूल ज्ञात हुई। एक दिन प्रताप की सेना ने अकस्मात् शहबाज़खां की सेना पर आक्रमण किया। मुग़ल सेना प्रताप के आकस्मिक आक्रमण को सहन करने में समर्थ नहीं हो

सकी, वह मैदान छोड़कर भाग गई। जिस तरह से हिमालय के शिखर से निकलती गंगाजी को ऊपर लेजाना असम्भव है वैसे ही उस समय राजपूत वीरों का उत्साह रोकना असम्भव था। राजपूत वीरों ने भागते हुये मुग़ल सैनिकों का पीछा किया और मुग़ल सेना को बिलकुल नष्ट कर दिया मुग़ल सेना प्रताप को दल बल सहित कैद करने की चेष्टा करने लगी पर प्रताप के सामने मुग़ल सेना की कुछ न चली। उनकी सेना ने मुसलमानों का पीछा आमेट तक किया राजपूत वीरों ने आमेट के मुसलमान गढ़ रक्षकों को काटडाला। पीछे कुम्भलमेर पर धावा मारा मुग़ल सेना यहां हार गई विजय लक्ष्मी ने राजपूत वीरों को वरमाल पहनाई। कुम्भलमेर किले का मुसलमान किलेदार अबदुल्लाखाँ भी मारा गया उसकी समस्त सेना मारी गई। सफलता उद्योग की दासी है। परमात्मा भी उसी की सहायता करते हैं। जो अपनी सहायता आप करते हैं राणा प्रताप का उद्योग सफल हुआ। थोड़े ही दिनों में ३२ किले उन्होंने मुसलमानों से छीन लिये एक वर्ष अर्थात् सन् १५८६ ई० के भीतर ही भीतर उन्होंने चित्तौड़, उदयपुर और मांडलगढ़ को छोड़ सारा मेवाड़ अपने हस्तगत कर लिया। आंबेर (जयपुर) के मानसिंह के वाणिज्य स्थल मालपुर को लूटकर उन्होंने मानसिंह को भी शिक्षा दी थी। एक समय प्रताप ने चित्तौड़ के उद्धार के करने के कठिन व्रत में अपने देश भाइयों की वस्ती उजाड़ डाली थी, दूसरी बार अपने प्रबल शत्रुओं के खून में तलवार रङ्ग कर मेवाड़ भूमि श्मशान भूमि बना दी।

राजपूत वीरों के साहस और पराक्रम से घबड़ा कर,

मुसलमान सेनाने उदयपुर छोड़ देना ही गनीमत समझा। इससे उदयपुर भी प्रताप के हाथ लग गया। बादशाह अकबर को इस तरह अपने हाथ से मेवाड़ निकल जाने पर अत्यन्त शोक हुआ। फिर उसने मेवाड़ लेने की आशा नहीं की क्योंकि उसको मेवाड़ की पहली विजय ही बहुत महंगी पड़ी थी। कोई कोई इतिहास; लेखक कहते हैं कि प्रताप का साहस वीरत्व और उद्योग देख कर अकबर का मन पिघल गया और भक्ति में डूबकर वह उनको अधिक कष्ट न देसका। हम ऐसे कहने वालों के साथ कदापि सहमत नहीं होसकते हैं। भला जिस अकबर का हल्दी घाटी में चौदह हजार राजपूतों का रक्त बहते देखकर हृदय नहीं पिघला था, उसका अब हृदय क्यों पिघलने लगा ? । कोई भी विचारशील मनुष्य अकबर के हृदय पिघलने पर नहीं विश्वास कर सकता है। *अकबर के हृदय पिघलने के विषय में कहना चण्डू खाने की गप्प से कुछ कम नहीं है। यदि थोडी देरके लिये मान भी लें कि अकबर का हृदय पिघल भी गया था, तो अकबर का यह हृदय पिघलना वैसा ही था, जैसा इस यूरोपीय महाभारत में रूस का पोलैण्ड को स्वराज्य देना

* अकबर का हृदय पिघलना असम्भव था क्यों कि; Badouni Vol. II. p. 240 में "तबकाते अकबरी" के आधार पर लिखा हुआ है ! "उस समय मानसिंह के अधीन, मुगल सेना प्रताप का राज्य लूटना चाहती थी, पर मानसिंह ने मने कर दिया। इस पर अकबर ने कुछ दिनों के लिये दरबार दारी रोक दी थी, Illiots' History of India Vol. p. 40. में लिखा हुआ है कि मुसलमान सेनापति आसफखां को भी इस तरह से बादशाह का क्रोध पात्र बनना पड़ा था।

सकी, वह मैदान छोड़कर भाग गई। जिस तरह से हिमालय के शिखर से निकलती गंगाजी को ऊपर लेजाना असम्भव है वैसे ही उस समय राजपूत वीरों का उत्साह रोकना असम्भव था। राजपूत वीरों ने भागते हुये मुग़ल सैनिकों का पीछा किया और मुग़ल सेना को बिलकुल नष्ट कर दिया मुग़ल सेना प्रताप को दल बल सहित कैद करने की चेष्टा करने लगी पर प्रताप के सामने मुग़ल सेना की कुछ न चली। उनकी सेना ने मुसलमानों का पीछा आमेट तक किया राजपूत वीरों ने आमेट के मुसलमान गढ़ रक्षकों को काटडाला। पीछे कुम्भलमेर पर धावा मारा मुग़ल सेना यहां हार गई विजय लक्ष्मी ने राजपूत वीरों को वरमाल पहनाई। कुम्भलमेर किले का मुसलमान किलेदार अबदुल्लाखाँ भी मारा गया उसकी समस्त सेना मारी गई। सफलता उद्योग की दासी है। परमात्मा भी उसी की सहायता करते हैं। जो अपनी सहायता आप करते हैं राणा प्रताप का उद्योग सफल हुआ। थोड़े ही दिनों में ३२ किले उन्होंने मुसलमानों से छीन लिये एक वर्ष अर्थात् सन् १५८६ ई० के भीतर ही भीतर उन्होंने चित्तौड़, उदयपुर और मोड़लगढ़ को छोड़ सारा मेवाड़ अपने हस्तगत कर लिया। आंबेर (जयपुर) के मानसिंह के वाणिज्य स्थल मालपुर को लूटकर उन्होंने मानसिंह को भी शिक्षा दी थी। एक समय प्रताप ने चित्तौड़ के उद्धार के करने के कठिन व्रत में अपने देश भाइयों की वस्ती उजाड़ डाली थी, दूसरी वार अपने प्रबल शत्रुओं के खून में तलवार रङ्ग कर मेवाड़ भूमि श्मशान भूमि बना दी।

राजपूत वीरों के साहस और पराक्रम से घबड़ा कर,

मुसलमान सेनाने उदयपुर छोड़ देना ही गनीमत समझा। इससे उदयपुर भी प्रताप के हाथ लग गया। बादशाह अकबर को इस तरह अपने हाथ से मेवाड़ निकल जाने पर अत्यन्त शोक हुआ फिर उसने मेवाड़ लेने की आशा नहीं की क्योंकि उसको मेवाड़ की पहली विजय ही बहुत महंगी पड़ी थी। कोई कोई इतिहास; लेखक कहते हैं कि प्रताप का साहस वीरत्व और उद्योग देख कर अकबर का मन पिघल गया और भक्ति में डूबकर वह उनको अधिक कष्ट न देसका। हम ऐसे कहने वालों के साथ कदापि सहमत नहीं होसकते हैं। भला जिस अकबर का हल्दी घाटी में चौदह हजार राजपूतों का रक्त बहते देखकर हृदय नहीं पिघला था, उसका अब हृदय क्यों पिघलने लगा? कोई भी विचारशील मनुष्य अकबर के हृदय पिघलने पर नहीं विश्वास कर सकता है। *अकबर के हृदय पिघलने के विषय में कहना चण्डू खाने की गप्प से कुछ कम नहीं है। यदि थोड़ी देरके लिये मान भी लें कि अकबर का हृदय पिघल भी गया था, तो अकबर का यह हृदय पिघलना वैसा ही था, जैसा इस यूरोपीय महाभारत में रूस का पोलेण्ड को स्वराज्य देना

* अकबर का हृदय पिघलना असम्भव था क्यों कि Badouni Vol. II. p. 240 में "तबकाते अकबरी" के आधार पर लिखा हुआ है! "उस समय मानसिंह के अधीन, मुगल सेना प्रताप का राज्य लूटना चाहती थी, पर मानसिंह ने मने कर दिया। इस पर अकबर ने कुछ दिनों के लिये दरबार हाजी रोक दी थी, Illiots' History of India Vol. p 40. में लिखा हुआ है कि मुसलमान सेनापति आसफ़खां को भी इस तरह से बादशाह का क्रोध पात्र बनना पड़ा था।

है जब बड़े बड़े राष्ट्रों का कुछ वश नहीं चलता है तब वे अपनी इज्जत आबरू रखने के लिये ऐसा ही लाचारी उदारता दिखलाते हैं, जैसी इस समय रूसने पोलेण्ड के प्रति, दिखलायी है। सम्भव है, अकबर की भी कुछ ऐसीही नीति दूसरी बार में मेवाड़ पर आक्रमण करने में हो, कम से कम यह तो इतिहास के प्रत्येक निस्पक्षपाती विद्यार्थी को मानना पड़ेगा कि लगातार के बाईस वर्ष के युद्धने अकबर की आंखें खोलदी थीं कि मेवाड़ के राजपूत वीर सहज में ही मरने वाले नहीं है। मेवाड़ की विजय में उसकी शक्ति बहुत नष्ट होती है।



बीसवां परिच्छेद

जीवन सन्ध्या और अन्तिम सन्देश

"राम राम कहि, राम राम कहि राम।
राम, राम रामहिं रटत, राव गये सुरधाम" ॥

—तुलसीदास

* * * * *

"जननी अरु जन्मभूमि को बढ़ प्राणहुते देख।
इनकी रक्षा के लिये प्राण न कछु अवरेख"।

मेवाड़ का उद्धार हुआ उदयपुर भी हाथ पर चित्तौड़ का उद्धार न हो सका जिस चित्तौड़ गढ़ के उद्धार के लिये कठिन प्रतिज्ञा की थी उस चित्तौड़ गढ़ से अभी तक मुसलमान दूर नहीं हुए। हाय ! जन्मभूमि चित्तौड़ अभी तक मुग़लों के हस्तगत है। यह दारुण वेदना—महाराणा प्रतापसिंह की दूर न हुई। चित्तौड़ की दुर्दशा देखकर और उनके पूर्व गौरव को स्मरण करके, प्रताप का मानसिक कष्ट दूर नहीं हुआ। अनेक आपदा, विपत्तियों के झेलने और रातदिन चिन्ता रूपी सर्पिणी के डसने से उनका अन्तिम समय आन पहुंचा संवत् १६५३ में प्रताप का अपूर्ण वय में ही देहान्त हो गया।

इस संसार से चलते समय भी प्रताप के हृदय से चित्तौड़ गढ़ की दुर्दशा दूर नहीं हुई. उस समय उनके प्राण पखेरू को बड़ी कठोर वेदना हुई। उस समय राजर्षि

प्रतापसिंह तृण की शय्या पर अपनी कुटी में लेटे हुए थे उनके चारों ओर नामी नामी सरदार जमा थे, सब चुप चाप थे, किसी के मुंह से एक अक्षर भी नहीं निकलता था, सभी व्यथित हृदय हो कर महाराणा के अन्तिम दर्शन कर रहे थे। महाराणा का अन्तिम कष्ट देख कर चन्द्रावत् सरदार ने बड़े कोमल शब्दों में पूछाः—अन्नदाता जी! इस समय ऐसा कौन सा कष्ट है, जो श्रीमान् को विश्राम नहीं करने देता। इस पर वीरेन्द्र प्रताप ने सदैव की भांति उत्तर दियाः—मुग़लों के हाथ में मेवाड़ भूमि न जाने पावेगी, यह प्रतिज्ञा सुनने पर ही शान्ति के साथ प्राणत्याग करूंगा। इस के कुछ देर पीछे महाराणा प्रतापसिंह ने कहाः—पीछोला तालाब के किनारे पर विपत्ति के समय वर्षा और धूप से बचने के लिये कुछ झोपड़ियां बनाई गई थीं उन एक से एक दिन अमरसिंह बाहर निकल रहा था कि छप्पर के बांस में उसकी पगड़ी उलझ गई, इससे वह दुःखित और क्रोधित हुआ, इस बात को देखकर मैंने निश्चय कर लिया कि जन्म-भूमि की रक्षा के लिये, स्वदेश के गौरव को स्थिर रखने के लिये जो जो कष्ट सहन करने होते हैं उन्हें अमरसिंह सहन नहीं कर सकेगा। इसके रहने के लिये सुन्दर बड़े बड़े महल चाहियें, जब सुख पाने की इच्छा हुई, तब सुखमें पड़कर कौन स्वदेश रक्षा कर सकता है? जिस मातृभूमि के गौरव की रक्षा के लिये, हमारे हजारों राजपूत वीरों ने रक्त बहाया था, वह मातृभूमि का गौरव योंही विलीन हो जायगा। उस समय हाय! तुम लोग भी प्रण को भूल कर भोगविला-सता में फंस जाओगे तब कैसे शान्ति पूर्वक प्राणों का

विसर्जन करूं।

यह कहकर राजर्षि प्रताप क्रोध और आवेश में आकर शय्या से उठ बैठे सरदारोंने विनय पूर्वक शैय्या पर लिटाया सलूंवर राव तथा सब सरदारोंने प्रतिज्ञा की हम लोग वाप्पा रावल के राजसिंहासन को छूकर प्रतिज्ञा करते हैं कि हम मेवाड़ के गौरव को नष्ट नहीं होने देगें। जब तक समस्त मेवाड़ का उद्धार न होगा, जब तक चित्तौड़गढ़ पर सिसोदिया वं■ की ध्वजा पताका न फहरायगी तब तक कदापि हम इस स्थान पर महल नहीं बननें देंगे"। यह सुन कर वीरेन्द्र प्रताप ने चिरकाल के लिये शान्ति पूर्वक महानिद्रा की गोद में विश्राम किया। मेवाड़ अनाथ होगया। राजपूत जाति का गौरव विलीन होगया हिन्दुओंका एक मात्र रक्षक उठ गया।

जाओ प्रताप! भले ही जाओ!! पर स्वर्ग में से एक बार झाँक कर अपनी भारत माता की ओर देखो तो सही आज भी भारत माता तुम्हारे लिये रोरही है—

*"कोऊ नहिं पकरत मेरो हाथ
बीस कोटि सुत होत फिरत मैं हाहा हुई अनाथ।
जाकी सरन गहत सोई मारत सुनत न कोउ दुखगात॥
दीन बन्यौ इत सों उत डोलत टकरावत निज माथ।
दिन दिन विपत्ति बढ़त सुख छीजत देत कोऊ नहिं साथ॥
सब विधि दुख सागर में डूबत धाय उबारो नाथ॥"

भारत माता का यह आर्त्तनाद आपके कान में पहुँचें या

* भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ०

नहीं पर आपकी कीर्त्ति अनन्त है। जब तक यह संसार है तब तक प्रताप का सौरभ दिग दिगान्त व्यापी रहेगा। जननी की वियोग वेदना में बहुत मनुष्योंको विह्वल होते देखा है परन्तु जन्म भूमि के लिये आपके समान कष्ट सहन करनेवाले विरल ही होते हैं? आज वीरेन्द्र प्रताप इस संसार में नहीं है पर उनकी कीर्त्ति अमर है। नश्वरकयरः है। न प्रतापसिंह हैं, न हैं मान सिंह पर आज तक आदरभाव से प्रताप के नाम की माला जपी जाती है अकबर और मानसिंह को कोई पूछता भी नहीं है। प्रताप की वीरता के सम्बन्ध में अधिक क्या कहा जाय और अधिक कहने की किसी में शक्ति नहीं है। प्रताप का चरित्र मातृ पूजा का आदर्श है। स्वदेश भक्ति का ज्वलन्त दृष्टान्त है। चाहे गिरिराज हिमालय अपने स्थान से खिसक जाय, चाहे सूर्य भगवान अपनी गति छोड़ दें, चाहे भारत महासगार का सम्पूर्ण जल भी भारतवर्ष को न डूबो दे तो भी प्रताप की अनन्त कीर्ति मिट नहीं सकती। अरावली पर्वत की गुफाएं और सब ऊपरी भाग वीरेन्द्र प्रताप सिंह के गौरव का स्मरण दिलाते हैं यह गौरव का विजय स्तम्भ चिरकाल तक ऊंचा रहकर मेवाड़ के वीरों को वीरेन्द्र प्रताप की महिमा का स्मरण दिलाते रहेंगे। जिस जाति में महाराणा प्रताप, गुरु गोविन्द सिंह बन्दा बहादुर शिवाजी आदि महपुरु पैदा हुए हैं वह जाति कदापि नहीं मर सकती है। चाहे वह थोड़े काल को सिसकती जरूर रहे। हिन्दू जाति! इस समय तेरी चाहे जैसी अधोगति होगई हो पर अभी तेरे निराशा होने का समय नहीं आया है।

वीरपूजा के प्रेमियो। प्रतिवर्ष महाराणा प्रतापसिंह की जन्मगांठ मनाओ प्रतिवर्ष उनकी स्मृति मनाओ नित्य नित्य अपने घरों में प्रताप-चरित्र की चर्चा करो जिससे सच्ची वीरपूजा हो।

॥ इति ॥

ओंकार बुकडिपो पुस्तक भण्डार—प्रयाग

सब सज्जनों की सेवा में निवेदन है कि ओंकार बुकडिपो नामक एक बृहत् पुस्तकालय प्रयाग में खोला गया है। जिस में हिन्दी साहित्य की सब प्रकार की पुस्तकें विक्रयार्थ रक्खी जाती हैं। कन्याओं तथा स्त्रियों के लिये तो जो संग्रह इस पुस्तकालय में किया गया है वैसा शायद सारे भारतवर्ष भर में न होगा। बालक और बालिकाओं को इनाम देने के लिये सब प्रकार की उत्तम और शिक्षाप्रद पुस्तकें यहां मिलती हैं उच्च कक्षा के हिन्दी साहित्य प्रेमियों के लिये तो यह पुस्तकालय भण्डार ही है। यही नहीं इस पुस्तकालय का अपना प्रेस भी है। अंग्रेज़ी हिन्दी और उर्दू का सब प्रकार का टाइप मौजूद है। इसमें हिन्दी भाषा की उत्तमोत्तम पुस्तकें छापी जारही हैं। हिन्दी भाषा के लेखक जो उत्तम पुस्तकें स्वतन्त्र लिखें या अनुवाद करें और प्रकाशन का भार ओंकारबुकडिपो को देना चाहें वे कृपाकरके मेनेजर से पत्र व्यवहार करें। कमीशन एजेंट जो हमारी पुस्तकें बेचना चाहते हैं। वे भी पत्र व्यवहार करें उनको उचित कमीशन दिया जायगा।

मेनेजर ओंकार बुकडिपो प्रयाग

कन्या-मनोरंजन

एक अनोखा सचित्र मासिकपत्र

कन्याओं तथा नव वधुओं के लिये कन्या-मनोरंजन एकही अद्वितीय सचित्र मासिक पत्र है। यदि आपको अपनी पुत्रियों बहिनों तथा नववधुओं को विद्यावती, गुणवती, मधुर भाषिणी और सदाचारिणी बनाना है तो आप कन्यामनोरञ्जन अवश्य मगाइये। मूल्य भी ऐसे उत्तम मासिक पत्र का केवल १) साल है डांक महसूल सहित साढ़े ६ पैसे मासिक पड़ते हैं।

मेनेजर—कन्या-मनोरञ्जन प्रयाग।

ओङ्कार आदर्श-चरितमाला

सज्जनों की सेवा में निवेदन है कि ओंकार प्रेस प्रयाग ने संसार के आदर्श पुरुषों के जीवन चरित निकालने आरम्भ कर दिये हैं। प्रत्येक जीवन चरित का मूल्य केवल ।) आना है। प्रत्येक जीवन चरित में लगभग १०० पृष्ठ होते हैं और चरित नायक का एक सुन्दर चित्र भी दिया जाता है। प्रत्येक मास में लगभग दो जीवन चरित निकाले जाते हैं। इस प्रकार ४०० जीवन चरित निकाले जांयगे। यदि आप अपना तथा अपने बालक तथा बालिकाओं की उन्नति चाहते हैं तो आप पढ़िये और अपने बच्चों को पढ़ाइये। जो लोग अपना नाम ग्राहकश्रेणी में पहले लिखा लेंगे और रुपया भेज देंगे उन के पास १२ जीवन चरित घर बैठे पहुंच जायंगे। प्रत्येक जीवन चरित छपते ही सेवा में भेजा जाया करेगा। डांक महसूल न देना पड़ेगा।

जो लोग रुपया पेशगी न भेजकर ग्राहक श्रेणी में नाम लिखाना चाहते हैं उनको वी० पी० और डांक महसूल सहित प्रत्येक जीवनी ।=) में भेजी जावेगी।

छपे हुये जीवन चरित	निम्न लिखित छप रहे हैं
१—स्वामी विवेकानन्द	१—नेपोलियन बोनापार्ट
२—स्वामी दयानन्द	२—छत्रपति शिवाजी
३—महात्मागोखले	३—आर्य पंथकी पं० लेखरामजी
४—समर्थ गुरु रामदास	४—स्वामी शंकराचार्य
५—स्वामी रामतीर्थ	५ महात्मा गौतम बुद्ध
६—राणा प्रतापसिंह	६—महादेव गोविन्द रानडे
७—गुरु गोविन्द सिंह	७—गुरु नानक
८—आत्मवीर सुकरात	८—भीष्म पितामह

मैनेजर—ओंकार प्रेस, प्रयाग।